प्रकाशक
जे. एल. गुप्ता
राजस्थान प्रकाशन
त्रिपोलिया बाजार
जयपुर-२

O

शिक्षा विभाग, राजस्थान के लिए
शिक्षक दिवस (५ सितम्बर ७३)
के अवसर पर प्रकाशित

आवरण :
सुशील सक्सेना

O

वर्ष : १९७३

मूल्य : छह रुपये बीस पैसे मात्र

मुद्रक :
मॉडर्न प्रिन्टर्स
गोधों का रास्ता,
जयपुर-३

राष्ट्र-निर्माण के कार्यों में शिक्षक की भूमिका निर्विवाद है। समाज शिक्षक के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करने की दृष्टि से प्रति वर्ष शिक्षक-दिवस का आयोजन करता है।

शिक्षा विभाग, राजस्थान इस अवसर पर शिक्षकों का सम्मान कर उन्हें राज्य स्तर पर पुरस्कृत करता है और उनके कार्यकारी जीवन के सृजनशील क्षणों को संकलनों के रूप में प्रकाशित करता है।

इन संकलनों में शिक्षकों की क्रियाशील अनुभूतियाँ, साहित्य-सर्जना के अविरल भारतीय प्रवाह में उनकी संवेदन-शीलता तथा सामाजिक-सांस्कृतिक समकालीनता के स्वर मुखरित होते हैं और उन्हें यहाँ एकस्थ रूप में देखा और पढ़ा जा सकता है।

सन् १९६७ से विभागीय प्रवर्तन द्वारा सृजनशील शिक्षकों की रचनाओं के प्रकाशन का जो उपक्रम एक संग्रह के प्रकाशन से आरम्भ किया गया था, वह अब प्रति वर्ष पाँच प्रकाशनों की सीमा तक पहुँचा है। प्रसन्नता की बात है कि भारत-भर में इस अनूठी प्रकाशन-योजना का स्वागत हुआ है और उससे सृजनशील शिक्षकों की अभिरुचियों को प्रखरतर होने की प्रेरणा मिली है।

सन् १९७२ तक इस प्रकाशन-क्रम में २२ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं और उस माला में इस वर्ष ये पाँच प्रकाशन और सम्मिलित किए जा रहे हैं:

१. खिलखिलाता गुलमोहर (कहानी-संग्रह)
२. धूप के पखेरू (कविता-संग्रह)
३. रेजगारी का रोजगार (रंगमंचीय एकांकी-संग्रह)
४. अस्तित्व की खोज (विविध रचना-संग्रह)
५. कूंत.बेली . कुवाडेमी (राजस्थानी रचना-संग्रह)

राजस्थान के उत्साही प्रकाशकों ने इस योजना में आरम्भ से ही पूरा-पूरा सहयोग प्रदान किया है। इसी प्रकार शिक्षकों ने भी अपनी रचनाएँ भेजकर विभाग को सहयोग प्रदान किया है। इसके लिए लेखक तथा प्रकाशक दोनों ही धन्यवाद के पात्र हैं।

आशा है, ये प्रकाशन लोकप्रिय होंगे और सृजनशील शिक्षक अधिकाधिक संख्या में अगले प्रकाशनों के सहयोगी बनेंगे।

र० सि० कुमट
निदेशक

शिक्षक-दिवस, १९७२

प्रकाशक
जे. एल. गुप्ता
राजस्थान प्रकाशन
त्रिपोलिया बाजार
जयपुर-२

O

शिक्षा विभाग, राजस्थान के लिए
शिक्षक दिवस (५ सितम्बर ७३)
के अवसर पर प्रकाशित

आवरण :
सुशील सक्सेना

O

वर्ष : १९७३

मूल्य : छह रुपये बीस पैसे मात्र

मुद्रक :
मॉडर्न प्रिन्टर्स
गोधों का रास्ता,
जयपुर-३

खिलखिलाता गुलमोहर — कहानी संग्रह

राष्ट्र-निर्माण के कार्यों में शिक्षक की भूमिका निर्विवाद है। समाज शिक्षक के प्रति अपनी कृतज्ञता अर्पित करने की दृष्टि से प्रति वर्ष शिक्षक-दिवस का आयोजन करता है।

शिक्षा विभाग, राजस्थान इस अवसर पर शिक्षकों का सम्मान कर उन्हें राज्य स्तर पर पुरस्कृत करता है और उनके कार्यकारी जीवन के सृजनशील क्षणों को सकलनों के रूप में प्रकाशित करता है।

इन सकलनों में शिक्षकों की क्रियाशील अनुभूतियाँ, साहित्य-सर्जना के अखिल भारतीय प्रवाह में उनकी सवेदन-शीलता तथा सामाजिक-सांस्कृतिक समकालीनता के स्वर मुखरित होते हैं और उन्हें यहाँ एकस्थ रूप में देखा और पढ़ा जा सकता है।

सन् १९६७ में विभागीय प्रवर्तन द्वारा सृजनशील शिक्षकों की रचनाओं के प्रकाशन का जो उपक्रम एक सग्रह के प्रकाशन से आरम्भ किया गया था, वह अब प्रति वर्ष पाँच प्रकाशनों की सीमा तक पहुँचा है। प्रसन्नता की बात है कि भारत-भर में इस अनूठी प्रकाशन-योजना का स्वागत हुआ है और उससे सृजनशील शिक्षकों की अभिरुचियों को प्रसरणर होने की प्रेरणा मिली है।

सन् १९७२ तक इस प्रकाशन-क्रम में २२ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं और उस माला में इस वर्ष ये पाँच प्रकाशन और सम्मिलित किए जा रहे हैं

१	खिलखिलाता गुलमोहर	(कहानी-सग्रह)
२	धूप के पखेरू	(कविता-सग्रह)
३.	रेजगारी का रोजगार	(रंगमचीय एकांकी-सग्रह)
४	अस्तित्व की खोज	(विविध रचना-सग्रह)
५	कून बेली . कुवाबेली	(राजस्थानी रचना-संग्रह)

राजस्थान के उत्साही प्रकाशकों ने इस योजना में प्रारम्भ में ही पूरा-पूरा सहयोग प्रदान किया है। इसी प्रकार शिक्षकों ने भी अपनी रचनाएँ भेजकर विभाग को सहयोग प्रदान किया है। इसके लिए लेखक तथा प्रकाशक दोनों ही धन्यवाद के पात्र हैं।

आशा है, ये प्रकाशन लोकप्रिय होंगे और सृजनशील शिक्षक अधिकाधिक सख्या में अपने रचनाओं के सहयोगी बनेंगे।

र० नि० कुमट
निदेशक

शिक्षक दिवस, १९७२

अनुक्रम

"तूने अपने प्राणाधार आलोक को अपने में सी रखा है; अपने में समेट रखा है। वह आलोक जो अपनी सुन्दर संहिता के अलभ्य आकलन को ही अस्तव्यस्त कर किसी गन्तव्य कोण का राही बन चुका है। वह आलोक जिसने लम्बी अवधि में निर्मित एक गीले करुणाकान्त चित्र को गरम पानी से धोकर अपनी तूलिका और रगों को डुबो दिया है, कहीं गहरे समुद्र में, और स्वयं भी शायद किसी लहर के साथ तैरता-उतराता निकल गया है—इतनी दूर जहाँ फिर तट की मुक्ता-प्रसविनी सीपी से मिलाप का वास्ता ही न हो।

"और तेरी उदासीनता अब विवशता से त्रस्त जीवन के अति अल्प दिनों को गिना गिना कर तोड़ना चाहती है, मरोड़ना चाहती है; और तू टूटा सा तृण होना चाहती है?

"कल विधा की वेणी से मोगरे की कलियों की गुम्फन टूट गई और गदराई कलियाँ अस्तव्यस्त हो गईं आंगन में, तो तूने यही कहा था न मीता कि लक्ष्य की परिपूर्ति के पश्चात् विघटन कोई अमांगलिक संकेत थोड़े ही माना जाता है!

"तू इतना विवेक रख कर भी मौन यन्त्रणा और दीर्घ-दाह की भट्टी के सान्निध्य में कैसे बैठी है? क्षोभ की सुरंग पर पैर जमाए कैसी अनकही उत्पीड़ना भोगती है? जीवन के खुले-रंध्रों को यों कैसे रौंदना चाहती है?

"आखिर क्या उपाय है? मुझसे तो खुल! हर समय की इतनी घुलन अच्छी नहीं है मीता! मैं भी घायल-सी, सुधबुध खोई-सी होने लगी हूँ, तेरी दशा पर। इतनी क्या निराशती है? तू नहीं जानती मीता, कोई ऐसी भ्रमरी भी होती है जो कड़वाहट से नहीं अत्यधिक मीठी गन्ध से मरती है!

"आलोक की सहृदयता दिख गई दुनिया को! उसने एक भाँने जीवन को उछाल कर दे मारा है, प्रचंड शिला की नोक पर जो कहीं धँसन में धँस कर क्रन्दन कर रहा है, कराह रहा है! किन्तु इसका अर्थ यह तो नहीं होता कि इस करुणालाप को प्रवाह रूप में बढ़ने ही दिया जाय! नहीं रोका जाय, जब तक कि वह दम नहीं तोड़ दे!

"मीता सब ले ले; उस फूल को सूँघ कर जी ले जिसमें ताजी खुशबू है। इस क्रन्दन को रोक दे; बहती बयार में थरथराते मखूर के पत्ते गा-गा

बन्धन ! मोह दे इस यौवन को, बन्धन में यौवन के दर्प का-सा यौवन !"

मुक्ताकाश पर चैतन्य बहाव की भाँति विचारों की लिपटन में मीता लीन रही। फिर भी मस्तिष्क और भावना का सामञ्जस्य इस समय तक नहीं बना पाई वह।

मन ही मन सोचती रही, मोती और गुलाब की कलियाँ निःसहाय नहीं हैं। उन्हें सवेरे का भानु कमनीय मयूखों का मन-भावन स्पर्श दे जाता है, उनकी सुषुप्ति को दूर कर जाता है। वे आलोक को लखती हैं, तब तक जीती हैं। कुछ ही कुछ समय के लिए वे आलोक में विकसती हैं।

किन्तु एक ऐसी भी पुष्पों की बेल है, जो असहाय है ठीक मेरी तरह। उसकी कोमल कलियाँ बेबसी और निरीहता में मेरी सहभागिनी हैं। और वे हैं—'रजनीगन्धा'। कितने दुलारने से द्रवीभूत !

बेचारी रजनी के अन्धकार में अपनी मनोव्यथा को लिए मचलकर महकती है। दर्द के आंसुओं में रस भरती है, तड़पती है, सुलगती है और विरह प्रहर में अपने आप बुझ जाती है। समय आलोक निष्ठुर बन कर उसे पहचाने नहीं पाता।

"रजनीगन्धा, मैं भी दुखी हूँ तेरी तरह; तेरा निशिवेला में कन-कन भीगना है, मेरे नयन भोर भीगना है। तू दर्द पीकर जीती है, मैं अश्रु पीकर।"

जैसे एक तन्द्रा टूट गई। मीता ने अपने को जरा सँभाला। उसी समय बाहु के बगल में सोई हुई पांच वर्षीया विभा उठ कर आई, और माँ की गोद में फिर पसर कर सो गई। विभा को फिर नींद लेने लगी। मीता ने देखा कि वह कुछ कच्ची नींद से उठ कर आई है, तो उसे अच्छी नींद लेने देने के लिए पंखे के नीचे सुला कर वह कार्य में व्यस्त हो गई।

"वे कहते थे दुःख को भूलना एक टैक्ट है। वह कैसा टैक्ट और वह दुःख भी कैसा कि जिसको भुलाया जा सके? उनके सामीप्य में मैंने संश्लिष्ट होकर नहीं समझा; अब समझ भी नहीं सकूँगी।

"पहले शीर्षक निश्चित करना कितना बुरा है? तुम्हारी गति उस कथाकार की तरह है, जो पहले शीर्षक बना कर फिर कथानक को कँटीली पंक्तियों से देखता है, झिझकता है, अपने आप में कटता है।

"मैं तुम्हारी कथा की अनजाने हाथ लगी 'वीथिका; जिसकी गरल छाँह में तुमने दुखान्त कथा निर्मित की। तुम और मैं ही तो इसके पथरीले पात्र हैं! पर तुमने यह *क्या किया! नायिका को किन तीखए काँटों में बींध दिया?* इसलिए, इसी उद्देश्य से तो मेरी अवहेलना नहीं की गई कि तुम्हें इस कथा को दुखान्त करना था। फिर ऐसा करके भी चरमोत्कर्ष कहाँ को पहुँचा है? *नहीं सोचा है तुमने!*

"तुम्हारी देन, यह विधा! मक्खन-से बाल तुमने धोए, कंघी से केश तुमने सँवारे, अपने साथ खिलाया-पिलाया और सुलाया। आज तीन दिन से तो उत्तप्त ज्वर में इतनी तप उठी है कि उसके तन्त्र ही ढीले पड़ गए हैं"। यह *सन्निपात के ज्वर में भी 'पापा' को नहीं भूल पा रही है। उसकी रट लगी* हुई है—'पापा-पापा'।

"*क्या अब तक जो कुछ हुआ, तुम्हारी ओर से निरपेक्ष भाव से हुआ* है? क्या लौकिक वासनाओं की तृप्ति के लिए ही यह कृत्रिम पाणिग्रहण का स्वांग मेरे साथ तुमने रचा था? मैं कहती हूँ, था तो पाणिग्रहण संस्कार न? कौन नकार सकता है, इस बात को? फिर किस अनहोनी घटना के पीछे युग-युग के समुज्ज्वल-जीवन को धूलि-धूसरित करने हेतु तुमने यह पथ अंगीकृत किया है। मैंने तो तुम्हें चिरंतन कामनाओं में रूपान्तरित कर अँगराग किया था; और ऐसी ही अपरिमेय उपलब्धि के रूप में तुमने मुझे स्वीकारा था न। अब दायित्व के निर्वहण में कौनसी प्रेरणा उन्वनित किए देती है तुम्हें?

"तुम्हारी विधा अर्धनिमीलित आँखों में निद्रा में जग कर, चमक कर तुम्हारे फोटो की ओर हाथ फैला देती है और "पापा-पापा" कहती हुई धाराओं में फूट पड़ती है।

"मुझे, इसको इतनी गम्भीर सांत्वना देना नहीं आता जितनी तुम दे सकते हो। *मैं तो सिर्फ इतना ही कर पाती हूँ; इतना ही कह पाती हूँ—बेटी!* पापा उस कमरे में हैं, पापा इस कमरे में हैं, और जब वह इधर-उधर होती है, तुम्हारा पेंट और कोट हैंगर पर टाँग कर बहाना करती हूँ—'पापाजी आ गए न बिटिया, देखले यह उनका पेंट, यह उनका कोट और यह उनका अखबार, जिसे वे पढ़ रहे थे, और अभी-अभी टेबल पर छोड़कर, तथा कपड़े बदल कर तुझे सोई हुई देख कर कुछ समय के लिए बाजार को निकल गये हैं।

अभी लौटते हैं, बेटी ! और जब वह उदासीनता त्याग कर बाज़ार में ले चलने के लिए व्यग्र हो जाती है तो उसकी दशा देखी नहीं जा सकती।

"तुम नहीं जान पाए मूक शिशु की पीड़ा, तुम नहीं सुन पाए बिलखती आत्मा की सिसकियाँ।

"दूध नहीं चाहिए, चाय नहीं चाहिए, लस्सी नहीं चाहिए, इसे चाहिए, पापा। गेंद नहीं चाहिए, गुड़िया नहीं चाहिए इसे चाहिए, पापा। गोली नहीं चाहिए, बिस्किट नहीं चाहिए, चॉकलेट नहीं चाहिए, इसे चाहिए पापा ! हाय पापा ! हाय पापा !"

खिड़की के बाहर सघन धुन्ध, बादल और कोहरा ! मीता ने अपने आप से कहा, "कितना कँटीला वक्त है। प्रकृति की नैसर्गिक सुन्दरता को भी कभी-कभी दर्द लीलने को उद्यत रहता है।"

उसने इस समय यही तो निश्चय किया था कि वह आगे अब इतना नहीं सोचेगी। सोते-जागते, उठते-बैठते हर समय बस एक ही दायरे में उसके बँधे विचार घूमते रहते हैं। तिल-तिल कसक देते रहते हैं।

उसकी चिन्ताग्रस्त अन्तर्दृष्टि इतना विचार करके भी अपने को चुपचाप न रख सकी। उसका वह परिचक्र उसी प्रकार फिर चालू हो गया।

"वे सिर्फ इतना ही तो चाहते होंगे, यह शादी क्यों हुई ? उनके महत्त्व को परिगलित करने वाली शादी ! मेरे दोष और उनके दोष को तुला पर तौल कर नहीं देखा है उन्होंने ? कौन भारी पड़ता है ? सिर्फ विधा का निर्णय चाहती हूँ, उनसे मैं। मुझे उनके अलगाव की कसक नहीं। उनके दुराव में विधा क्यों दिखती है हर समय ! यही तो एक प्रश्न पूछना है उन्हें मुझे। उनके धूमिल अस्तित्व का परिशमन करना है मुझे; दो टूक बात करनी है मुझे। नहीं तो अब अतिरिक्त और कुछ भी नहीं कहना है।

"इतना-सा और कहना है मुझे उन्हें कि तुम्हारी अभिजात्यता, जिसकी ऊसर उठान जहरीले अभिशापों में से है, किसी अन्य के लिए क्यों अभिशापित होती है ? प्रेमांकुरण को तराशती है ? अमृत-उदय को अँधारती है ?

"तुम्हारे संवरण में डूबी और डूब कर भी तुम्हारी थाह न ले सकी ! तुमने कदाचित् मेरी थाह नाप कर रतन निकालने की चेष्टा की है।

क्यों नहीं ? तवारीख में अभिजात्यता पर ऐसी ही कई गहरी कालिखें पुती हुई हैं जिन पर सफ़ेदी के उज्ज्वल आवरण मढ़ कर उन्होंने अपनी ऐबें ढांप रखी हैं।

"इस अभिजात्यता ने सुन्दर को असुन्दर, भरे को रिक्त, विभव को अकिंचन और जीवन को मृत्यु रूप दिया है।

"तुम्हारी श्रेष्ठता इसी में थी कि तुम किसी अभिजातीय कन्या का वरण कर अपनी कुलीनता का लाभ लूटते ! मेरे जीवन को स्पंदित कर, मेरे तन-मन को सहेज कर कहीं ओझल होने की यह चूक कैसे की ? आश्रित को निराश्रित करना शायद अभिजात्यता का धर्म होगा ? फूलों को तोड़ कर पैरों के तले कुचलते जाना अभिजात्यता का अटल अभियान होगा ?

"मुझे व्यथा है जी भर कर इस बात की कि तुम्हारी यह महान वस्तु यहाँ कूड़े-कचरे में कैसे पनप आई ? तुम्हारे स्खलन में तुमको झटका नहीं दिया ? अभिजात्यता इतनी हेय होती है, इतनी विरागी होती है, इतनी कटु होती है, इतनी दुराचारिणी होती है; आज एहसास हो रहा है मुझे इसका !

"तुम्हारी यह अमोघ वस्तु कुछ नहीं केवल भ्रम की गठरी मात्र है। ऐसा भ्रम जिसे एकान्त में पिया जाता है; अँधेरे में साधा जाता है, दृगितों में अंकित किया जाता है और जीवन को मृत्यु का मसार देकर मर्सिया की धुन में जिसे गाया जाता है।

× × × ×

"धीरा, यह क्या हुआ ? यह क्या सुना दिया तूने मुझे ! तू क्या कह रही है ? मैं नहीं सुनना चाहता तेरे इन शब्दों को ! मेरा मस्तिष्क तैयार नहीं है, ऐसी-वैसी बात सुनने के लिए मेरा हृदय इतना कड़ा नहीं है कि मैं तेरी इस बात को सुन कर, सहन कर सकूँ। तेरी एक बारगी आवाज ने मेरी लाश जो करदी है !

"मेरी बिया ! तेरे लिए मेरा हृदय ईश्वर ने मां से भी कोमल रचा था न ! तू इस कोमल कोख को छोड़ कर कहाँ प्रश्रय ले चुकी ? क्या यह सही है कि तू इस संसार से खोगई है, और सो गई है भूमि की कठोर गोद में। तेरी मम्मी को क्या कह कर विदा मिली मेरी मुन्नी, कि तू पापा से मिलने जारही है ! उन्हें खोजने जा रही है ! उन्हें मनाने जारही है, उन्हें लिवा लाने जा रही है या फिर अनमने मन की व्यथा मन में ही छिपा

कर बिना खाये-पिये, बिना रोये-हँसे, बिना कुछ कहे-सुने ही सदा-सदा के सम्बन्ध तोड़ कर चली गई !

"चली गई वहाँ कि जहाँ से अब मैं तुझे ढूँढ कर नहीं ला सकूँ, चली गई इतनी दूर कि आवाज भी न दे सकूँ, छिप गई ऐसी ओट में कि इन आँखों से अब नहीं देख सकूँ !

"मुझे याद है मेरी विधा ! तू एक बार नाराज होकर उस रात्रि को बाथरूम में जा छिपी तो बहुत ढूँढने के पश्चात वहाँ मिली। मैंने तुझे उठाया और छाती से चिपका लिया। उस समय तूने मेरे सीने पर कान लगा कर मेरी धड़कन तो सुनी होगी ! मेरी बेटी, आज तू नहीं जानती कि वह धड़कन कितनी बढ़ गई है !

"आज भी ऐसा ही होगा मेरी बच्ची ! मैं तुझे खोजने निकलूँगा। पहले उस कमरे में पहुँचूँगा, जिसमें तू अक्सर रहती है, खेलती है, सोती है और खिलौने की पिटारी रखती है। मुझे विश्वास है तू उन खिलौनों के साथ खेलती हुई मुझे दिख जाएगी। मैं छिप कर तेरे समीप आऊँगा, और झुक कर तेरा खेल देखने लगूँगा। इतने अर्से से व्यग्र, तू मुझे देख कर दोनों हाथ फैला कर लपक आएगी मेरे गले में; और तब मैं स्नेह-विभोर तुझे उछालकर अपने सीने में चिपका लूँगा; फिर मौन हो जाऊँगा दो मिनट के वास्ते, एक गहरा संताप संजो कर। शायद उस समय तक मौन रहूँगा जब तक तू मुझे बोलने के लिए बाध्य न कर देगी।

"यदि वहाँ नहीं मिली तो मैं उस चिक को उठा कर देखूँगा, जिसके पीछे छिप कर तू हमें 'हाऊ-हाऊ' कह कर डराया करती है। तू वहाँ तो अवश्य ही मिल जायगी।

"यदि मेरा यह अदाज भी असफल रहा तो मैं हाँफता हुआ दौड़ कर बाथरूम की ओर जाऊँगा। उस समय निःसंदेह मेरी धड़कन की गति के साथ ही मेरे पैर उछल पड़ेंगे। किन्तु इतने विलम्ब के पश्चात् तो मैं बावला हो जाऊँगा न, मेरी बिटिया ! शायद पैर पथरा जायेंगे और मैं भूमि पर गिर पडूँगा। इस विलम्ब के लिए मैं अपने को तैयार कैसे रखूँगा मेरी लल्ली ?

"किन्तु नहीं नहीं, गिर भी गया तो क्या हुआ ? जमीन पर रेंगता हुआ, कोशिश करता हुआ बाथरूम तक तो किसी तरह था ही पहुँचूँगा।

"चूँकि तू अपनी नीली-फ्रॉक मे, उसके अगले छोर को मुँह में दबाए, बाएँ हाथ मे पाइप की टोंटी को पकड़े वही तो खड़ी मिलेगी मुझे !

"मेरी बेटी, मैं फिर तुझे वहाँ पाकर तन्मय हो जाऊँगा व्यथा से भीग उठूँगा, सावन-सा भर जाऊँगा। और मेरी विधा ! इस बार तू मुझे धोखा दे गई और नहीं मिली, तो मैं क्या करूँगा ? ठण्डा हो जाऊँगा, बर्फ की तरह ? नहीं-नहीं ऐसा नहीं होगा मेरी बेटी, ऐसा नहीं होगा !

"तू हट नहीं सकती वहाँ से, अपने पापा की प्रतीक्षा मे तू वही पीली दीवार के सहारे टोटी पकड़े खड़ी है। तू वहीं खड़ी रहना मेरे कहने से ! मेरा अन्तर उद्वेलित है न बेटी ! तू शायद नहीं जान पा रही है, मैं ठण्डा पड़ता जा रहा हूँ न बेटी ! मेरी धमनियों मे खून जमने लगा है।

"देख, बाथरूम का फाटक खोलता हूँ। दिख जाएगी न बेटी ? फफक कर रो उठेगी या चीख मार देगी न मुझे देख कर ?

"मेरी बेटी ! तू चीख मार देगी उस समय तो मैं बेहोश हो जाऊँगा: बाल नोच डालूँगा और तराश डालूँगा अपने भेजे को चाकू की तेज धार से; शिराओं को छील दूँगा; माथे की कनपटियों से खून खाली कर दूँगा। नोच डालूँगा उस मस्तिष्क को जिसमें अभिजात्यता की घिनौनी गन्ध भरी थी। उसे करमकल्ले की तरह काट कर छाँट दूँ, सवार दूँ"।

× × × ×

"हैं, क्या कहती है धीरा ?"

हाँ, वे होश-हवाश मे नहीं है मीता ! आलोक भैया इस जघन्य कृत्य के लिए बराबर प्रायश्चित की ही बात किये जा रहे हैं ! विधा की मृत्यु ने उन्हें विक्षिप्त-सा कर दिया है। भगवान उन्हें ठीक करेगा ! आज भी तुझे दो घण्टे में होश आया है, जरा दृढता रख। जन्म-मरण, मिलाप-बिछुड़न किसी के हाथ में थोड़े ही हैं। विधा की मृत्यु आसानी से नहीं भुलाई जा सकती मीता ! पहले तू सब भुला कर आलोक भैया को सान्त्वना दे। यदि वे अच्छे नहीं हुए तो क्या होगा ?

तेरी स्थिति को देख कर मैंने उन्हें अपने घर ही रोके रखा है। दारुण दुख में भी इस समय दृढ़ता रख कर उन्हें सान्त्वना देना तेरा कर्तव्य है।"

× × × ×

टूटी लतिका की तरह समीप जाकर मीता ने माथा जमीन पर टेक कर पड़े हुए आलोक के हाथ को अपने हाथ मे ले लिया, और फूट पड़ी—"मेरी विधा ! तेरे पापा तो अब आए हैं न ! तू 'पापा-पापा' करती कहाँ छिप गई ?" धीरा ने बाँहों में भर कर उसे सँभाला।

इधर आलोक कहता जारहा था—पडा-पडा बड़-बड़ा रहा था—"मेरी बिटिया बाथरूम की पीली दीवार के सहारे पाइप की टोटी पकड़ कर..................;"

मीता को एक बार फिर एहसास हुआ; रजनीगन्धा का दुःख भी एक दुःख है। बेचारी कितना दुःख पी कर, कितनी व्यथा झेल कर सुलगती है और रजनी के पिछले प्रहर मे अपने आप बुझ जाती है !

2

तीन बजे की धूप

भगवतीलाल व्यास

* * *

उदयपुर सिटी स्टेशन। चेतक एक्सप्रेस छूटने वाली है। यानि सात बजने में मुश्किल से दस-बारह मिनट शेष हैं। डिब्बे में बत्तियाँ नहीं जली हैं पर अंधेरा भी नहीं है। गरमियों में सांझ का सात बजे का समय अंधेरे को सहज ही स्वीकार नहीं करता। बेशक थोड़ी देर में अंधेरा आने वाला है। मगर इससे क्या? अभी तो स्लीपर कोच में लोग आ रहे हैं और सीटें भरती जा रही हैं। लोग बिस्तरे फैला रहे हैं ताकि रात होने पर वे बिस्तरों पर पसर सकें।

"आपने तीन बजे की धूप देखी है?"

"हां······।"

"बात तो पूरी हो लेने दीजिए······।"

"सॉरी।"

"......... .... मैं कह रहा था, आपने तीन बजे की धूप देखी है? साधारण गली-कूचों की नहीं। किसी हरी-भरी वादी की। न जाने क्या ढूँढ़ती हुई, तीन बजे की धूप। बहुत प्यारी लगती है न धूप की उदास और ढूँढ़ती आँखें? वह वादी में क्या ढूँढ़ती है? शायद अपना मध्याह्न रूप या रूप मध्याह्न! धूप के उजले चेहरे पर वादी की निरुत्तर छाया परेशानी में बेझिझक मुख पर लटक आई लट-सी लगती है। शायद हर परेशान खूबसूरती की यही तसवीर हो सकती है। तीन बजे की धूप अभी-अभी स्लीपर में उतरी है। वह प्लेटफार्म पर टहल रही है। 'टहलना' कहना गलत होगा। वह किसी को ढूँढ रही है; ढूँढने दो।"

इतना कह कर वर्माजी अखबार पढ़ने लगे थे और मैं लोगों की भीड़ को। एकाएक मेरी दृष्टि प्लेटफॉर्म पर व्यग्रता से चहलकदमी करती 'उस' पर पड़ गई। बिलकुल वर्माजी द्वारा अभी-अभी बयान किए गए हुलियेवाली तीन बजे की धूप। बस देखते ही रहिये। नजर न भरना चाहती है न ठहरना। मगर ट्रेन को वक्त से प्लेटफार्म छोड़ना होता है। ट्रेन सरकने लगी और जल्दी ही वह सब कुछ पीछे छूट गया। डिब्बे में बत्तियाँ जल उठीं पर मेरा मन बुझने लगा।

मुझे बुझता हुआ देख कर वर्माजी ने फिर कुरेदा—

"कहिये, मैंने कुछ गलत तो नहीं कहा था?"

"नहीं ऽऽऽ .... मगर ....?"

"बात दरअसल ऐसी है कि इसे देख कर मुझे अपने एक मित्र की याद हो आई थी।' —कह कर वर्माजी फिर चुप हो गए।

वर्माजी से मेरा परिचय अभी दो-तीन दिन पुराना ही है। होटल में मेरे पड़ौस में ठहरे थे। पूरा नाम बताते थे पी. डी. वर्मा; प्रिय दर्शन वर्मा। इन दो-तीन दिनों में जितना उन्हें जान पाया हूँ यही कि बड़ी रसिक तबीयत के आदमी हैं। बातचीत के लहजे में साहित्यिकता का आभास पहली ही भेंट में हो गया था इसलिए पटरी बैठ गई। बातचीत करने का ढंग ही इनका ऐसा है। कहीं भावुकता में बहुत अधिक बह जाएँगे और बोलते ही जाएँगे और कहीं एक-एक शब्द पर इस तरह रुक कर सोचते रहेंगे जैसे बातचीत के धागे उलझ गए हों। ऐसे अवसरों पर मुझे इन धागों को सुलझाने में सहायता करनी पड़ती है।

दीजिये। अच्छा यह बताइये, इसमें गलती किसकी रही ? सुधीर की, उसकी पत्नी की या लड़की की ?"

मैं इस अप्रत्याशित प्रश्न का भला क्या उत्तर देता ! फिर भी हठात् मुँह से निकल पड़ा—"सुधीर की पत्नी को वैसा नहीं करना चाहिए था।"

"ओ. के. थैंक यू।" जरा हेडेक होने लगा है .... अब सोऊँगा।"

\+ \+ \+ \+

सवेरे जब महीन धूप से मेरी नींद खुली तो मैंने वर्माजी वाली बर्थ खाली पाई। अजमेर पीछे छूट चुका था। अखबार शायद वे भूल गये थे। यों ही मैंने उठा लिया। उसमें से एक गुलाबी कागज फर्श पर गिर पड़ा था। तार था सुधीर मिश्रा के नाम। किसी पी. डी. वर्मा का भेजा हुआ। वही पत्नी की आत्महत्या की खबर थी। मैं उस विचित्र सहयात्री के बारे में सोचता रहा। याद करता रहा 'तीन बजे की धूप' का चेहरा। शायद उदयपुर में फिर उससे कहीं भेंट हो जाय तो कुछ और सूत्र हाथ लग सकें।

●●●

3

"काला आकाश"

सावित्री परमार

* * *

मुरारी बाबू की सांस बंधने मे नही आ रही थी। खांसी उन्हें दम-मारने की भी फुर्सत नही दे रही थी। कलेजे मे जैसे धौंकनी चल रही थी। दुनिया भर की अटर-पटर पुड़ियां फांक ली, लेकिन कौड़ी-भर भी, आराम नही आया। मन मार कर दो-चार अंग्रेजी शीशियां भी गटक लीं, पर सब बेकार। खांसी क्या मामूली थी ! एकदम बला थी। पेट की आंतें मुंह मे आ लगतीं। आंखो के गोलक जैसे नीचे गिरने लगते। पसलियों से लेकर कनपटी तक देही की नसें तान की तरह खिंच जाती थीं। कल सोचा था कि मां का नुस्खा आजमायें। कहा करती थी कि "खांसी भी कोई रोग होवै है ! हल्की फुल्की भई तो काले नमक के साथ मुलैठी की जड़ और अनार के सूखे छिलके कूट-छान फांक लो....और जो कहीं थोड़ी जोर-जुल्म की रही तो बड़ी इलाची के डोडे भून-पीस के सहद मे घोल चाट लो... बस, मजाल जो खांसी का दुश्मन भी टिक जाय !... बाजार जाकर इलायची लाये। नुवाई भूनकर; पकने पर पीस कर शहद मे मिलाकर खूब चाटी, पर ये तरकीब भी कहां कारगर रही ?... दिमाग मे सब स्वप्न-सा चल रहा था।... न इलायची थी और न मां थी..........जाने क्या इन्द्रजाल-सा छा रहा था।

उन्हें आश्चर्य हुआ कि माँ का ख्याल क्यों आये जा रहा है कल से ? क्या चीज है जो पेट से उमड़कर गले में अटक कर आँखों को बार-बार भीला कर रही है ! मन में जाने क्या छिन गया है ! जाने कौन चीज एकदम रीत गई है ! कौन सा अबूझा दर्द है जिसे बहलाने के लिये माँ भरे ले रही है अपनी गोदी में, इस बूढ़े बेटे की गली हड्डियों को !

उन्होंने घबराहट-सी महसूस की । दीवार के सहारे तकिया लगाकर अधलेटे-से हो गये । माथा भिन्ना रहा था । छाती को जैसे कोई नुकीले पंजों से खुर्चे डाल रहा था । यह कमरा ! कल तक कितना पराया था लेकिन आज कितना अपना लग रहा है ? अब आखिरी चट्टान पर आकर पश्चाताप हुआ तो क्या हुआ ! काश ! अपने-पराये का भेद पहले ही मालूम हो जाता ! एक हूक सी उनके भीतर उठी । क्या मिला जिन्दगी गला के ! सारी उमर यों ही भागते-दौड़ते फिरे । दुनिया भर का कुनबा जोड़ा । अपने-पराये में कोई फर्क नहीं समझा । जहाँ तक बस चला, सभी के सुख का ध्यान रखा और खुद हमेशा बाहर पड़े रहे । कभी इस गाँव तो कभी उस कस्बे में । कभी बड़ा शहर नसीब नहीं हुआ । दिन भर लड़कों को मेहनत से पढ़ाना । एक वक्त खाना बनाकर दोनों समय खा लेना । इधर साल-छ: महीने से शरीर काम नहीं कर रहा था, तो अलग बात थी कि स्कूल के ही किसी चपरासी को कुछ दे दिला कर कच्ची-पक्की रोटियाँ बनवा के खा लेना । क्या आनन्द भोगा उन्होंने जीवन का ? बहुत जी ऊलसाया तो कस्बे के मोटर-अड्डे पर चाय की घड़ी पर जा बैठे ! पान-तम्बाकू की लत तो नहीं पाली, हाँ अलबत्ता शौकिया कभी-कभी गाढ़ी चाय जरूर वहाँ मक्खन डलवाकर पी लेते थे । ये जश्न शायद महीने दो महीने में पूरा होता था । फिर वही भाँय-भाँय करता एकाकी महीना । बीमार पड़ जाते तो कोई शिष्य घर से दलिया-खिचड़ी उबलवा लाता । बदले में वे उसे घसकर पढ़ा देते । बस्स.....यही रही उनकी दिनचर्या और यही बँधा रहा उनसे उनका जीवन !!

बैठे-अधलेटे उनकी कमर में चींटियाँ-सी रेंगने लगी थीं । तकिये नीचे करके वे सीधे लेट गये । आँखों के पपोटे भारी-से रहे थे । एक हाथ उनके ऊपर रख ली । कुछ चैन सा मिला ।

विचारों की गाड़ी फिर चल पड़ी । चार बहिनों की आखिरी थीं ।

पिछले तीन साल पहले तक उनके लड़के-लड़कियों के भात भरे। दो भतीजों को लिखा-पढ़ाकर इन्सान बनाया। नौकरी दिलाकर चार पैसे लायक किया क्योंकि छोटे भाई के दोनों हाथ कलाई तक मशीन में फँसकर कट गये थे। बाप के जमाने की एक दूकान थी, वह उसी के नाम करदी सोचकर कि कम से कम रूखी-सूखी तो खा-खिला लेगा। विधवा ताई को हमेशा माँ बराबर इज्जत देते रहे। दूर पड़े की एक बुआ थी बुर्जवाली; उनके बेटे को भी घर रखकर अपने बालकों के साथ ही पाला-पढ़ाया। उधर सुसराल में ऐसी आफत आई कि दोनों साले बरस भर में आगे-पीछे हो गये। गाँव की मुट्ठी भर जमीन पर कुनबे वाले टूट पड़े, जिसे बडी आफत उठाकर मुकद्दमेबाजी करके बचाया। इधर-उधर से कनेरे लगाकर, कभी आधबटाई पर देकर खेती करवाते रहे। फिर भी कभी लगान, कभी बैल, कभी भैंस तो कभी बीज आदि की समस्याओं को जब-तब निबटाते रहे। इन सब मुसीबतों के बाद फिर घर का और अपने बच्चों का नम्बर आता था। कुछ भी हो··· यों ही भरे छकड़े को खींचते ही रहे। इनके ऊपर आये दिन के आने-जाने, गमी-मौत और लेन-देन अलग से प्राण चूसते रहे। जाने कब इन्हीं में काया घुल गई। अध-कचरी उमर में ही निपट बूढ़े हो गये। देही की साज-सँवार की ही कब ? जाने कौन-कौन बीमारियाँ आती गईं और घर करती रहीं। देखते भी कब ! बस, घर भर को जमाने, सभी को खुश रखने, कर्त्तव्य पूरा करने में पागल बने रहे। लेकिन अहसान किया क्या किसी पर ? कब संतोष पाते रहे···· कि घर भर को जमाया ? इज्जत से ठिकाने बैठाया ! सभी बच्चे पढ़े। अच्छे घरों में रिश्ते किये। अपने-पराये में कभी भेदभाव की गंध नहीं आने दी। हाथ-पैर चले तो सब निभा दिया। जब हाथ-पाँव दगा दे जायेंगे, तो क्या गाड़ी भरे कुनबे की भीड़ से उनकी अकेली काया नहीं खींची जायेगी ?

नौकरी को भी क्या यों ही किया ! एक-एक क्षण को शिक्षा-दान में अर्पित किया। कितना श्रम-दान कराया ! परीक्षा-फल बढ़िया रखा। स्काउटिंग की टीम उनकी प्रसिद्ध रही। खेल-कूदों में उनके छात्र विजेता रहे। प्रत्येक सांस्कृतिक समारोह में या वादविवाद प्रतियोगिताओं में उनके स्कूल प्रथम आते रहे। कभी किसी से उनका झगड़ा नहीं हुआ, न कभी उन्होंने किसी से ईर्ष्या या घृणा की। अपने में मगन और खुद में संतुष्ट रहे। इनाम ? नहीं मिला तो क्या ?··· और इनाम क्यों नहीं मिला ? ईमानदारी

से मान, सम्मान से नौकरी की किसी के आगे हाथ नहीं फैलाया""यह क्या कम इनाम है ? श्रीराम उपाध्याय कहा करते थे ""क्या मिसिर जी ! यों ही रहे भोले भण्डारी बने ! अरे, कुछ तो आदमी को तेजतर्रार होना चाहिये ! आप तो सोचते हैं कि जग कैसा, जग मोसा""जमाने को देख कर चलो। कौन हड्डी तोड़ मेहनत को पूछता है ? कौन देखता है तुम्हारी ईमानदारी को ? कुछ और भी उलटबाँसियाँ चाहिये तरक्की पाने को ! घी निकालने के लिये उँगली टेढ़ी करनी ही पड़ती है ! देख लो, अगर गाँठ में अकल और माथे पर आँख हैं तो भरोसेलाल को देखो""जाने कैसी-कैसी गाँठ-गाँठ कस-कस के उछालें मारी हैं कि जो सबसे पीछे था अब सबसे आगे है"" सब जानते हैं उसके करतब पर कौन मुँह पर कहता ? जलो-मरो""वो तो ठाट से सीढ़ियाँ चढ़े जा रहा है। सो कहता हूँ, कि जमाने में जीना सीखो मुरारी बाबू !" ······ लेकिन उन्होंने अपने उसूल नहीं तोड़े। कभी भी अधिकारों की आड़ लेकर कर्त्तव्यों से मुँह नहीं मोड़ा था। वे तो सदैव गीता के उपासक रहे और कर्मशील कृष्ण के सिद्धान्त को मानते रहे कि कार्य करते रहो, फल की चिन्ता मत करो"" कहते रहे भरोसेलाल जैसे जाने कितने""पर वो अडिग रहे, कार्यरत रहे।

यों ही जोड़-घटा-बाकी करते-करते रिटायर हो गये। बड़ी खुशी हुई कि चलो अब चैन मिलेगा। अपनी नींद सोना, गरम खाना अब नसीब होगा। फिकर भी क्या ! जवान चार बेटे एक पाँचवां बेटा समान हुआ वो लड़का"" वो और बेटों से अलग रहा ! मौज ही मौज ! अरे ! खाया और और दिया टका क्या कभी भूला जाता है ! देने वाला फिर भी भूल जाये, पर लेने वाला ······! कभी नहीं।

बेतकी पर जाने कौन भूत सवार हुआ कि रटने लग गई— दुनिया ने घर खड़ा कर लिया पर मैं वही किराये के खोखलों में दम घोटती रही। जो पैसा मिलेगा वह या कुछ कर्ज लेकर अपना घर बनाओ। आखिरी उमर में ही सही, मन माफिक तो रह लें।""""उसका मन भी उन्होंने कहाँ तोड़ा ! पचीसियों किस्तों में जाकर एक घर खड़ा किया" जिसे घर कहें या नहीं ""समझ नहीं पाते आज भी ! कभी ईंटें आईं, कभी चूना, पत्थर डलवा दिया। दीवारें खड़ी हुई तो छत की पट्टियाँ नहीं आ पाईं। पट्टियाँ पड़ीं तो छत पर सीमेंट नहीं हो पाई। हर बरसात में दुःख पाते रहे। बहुत जिया

कर दो कमरे बिना पलस्तर के बरसों बिना किवाड़ों के रहे। किवाड़ें
तो वो भी आम की लकड़ी की। धूप-पानी लगते ही जिनकी दरारें उन्हीं
गरीबी की तरह चौड़ी हो उठी। सांकलें, कुन्दे भी कहां वक्त पर लं
आंगन कच्चा ही रहा। न घर गांव जैसा था और न शहर जैसा। व
भी क्या ?

रिटायर होकर जिस सुख की कामना ने उन्हें पागल बना दिया
वह भी पूरी कहां हुई ! हरेक चेहरा बुझा-बुझा-सा। सामने आने में
सभी कतराते हों ! आंखों में प्रश्नों की सुइयां चुभती हुई-सी ! दो साल
केतकी का दमा बढ गया। कोई दवा नही लगी। ज्यादा कीमती इल
करवा नही सके। दिन-दिन घुलती गई। उस बेचारी को भी क्या सुख मि
या ! वो बाहर पिसते रहे थे, तो वो घर मे खटती रही थी। बुआ थी
वो रही सास के आसन पर और ताई थी""सो उनका भी हुकुम देने
रिश्ता रहा""बची तो बस यही केतकी, जो हारी-बीमारी की भी परव
किये बिना जुटी रही अपने-परायों में ! उमर भर घूंघट मे दबी-घुटी रही
पहले खांसी""फिर बुखार"" और घड़ी भर आराम नहीं"" हो गया दमा
जरा उमर बढ़ी तो पोर-पोर का जोड़ गठिया ने जकड़ लिया।"" नहीं भे
पाई तो चल बसी""चलो अच्छा ही हुआ, वरना रोती उनकी तरह आ
आठ-आठ आंसू !

केतकी के सामने ही बच्चो के आसार उल्टे-सीधे नजर आने लगे थे
कहा तो करती थी वह कि"" "तुमने तो अब आ के देखा है"" मैं तो गील
लकड़ी-सी भीतर ही भीतर जाने कब से सुलग रही हूं। आधी उमर पूरी
करने पर भी बुआ जी और जीया के सामने बोलने की तो छोड़ो, नजर
मिलाने की हिम्मत नही पड़ी""पर यहां तो न बेटों में लिहाज बाकी रह
और न बहुओं मे हया बची। पहले भी कूटने-छानने में लगी रही और अब
भी चूल्हा नही छूटा""अरे ! बहुओं का क्या ! बेटों की फूट गई क्या कि
बड़ों की लिहाज-इज्जत क्या होती है !" उनसे कब उत्तर बना इन बातों
का ! सुनते थे और चुप रह जाते थे। तेज नश्तर मे कहां पता लगता है कि
घाव कहां और कितना गहरा लगा, वो तो जब दर्द चिनगता है, तब पता
लगता है न !""अब है न, कि हर पल जब घाव टीसता है तो मेहनत""
चिन्ता में कटे एक-एक क्षण याद आते हैं।

केतकी के मरते ही कमर टूट गई। फिर भी सब्र किया कि भरा घर है, चलो सँवर जायेगी अपनी भी काया।"''लेकिन दो वर्ष में तो क्या जादू"''सा हुआ कि दो बटे बाहर तबादला करा बैठे। दो तो पहले से ही बाहर थे कि "कुनबे में रहना भी कोई रहना हुआ! न मर्जी से चल पाओ, न चैन से रह पाओ"—मदद के नाम पर कुछ भी नहीं देते थे। रहे-सहे वे दो भी चलते बने। यह भी तो नहीं सोचा कि बूढ़ा पिता क्या करेगा? दो जून रोटी कौन देगा?

कटौतियों के नक्शे पर बना बेढँगा मकान इस लायक भी नहीं था कि किसी किरायेदार को बसा लिया जाये। साल भर में निपट अकेले रह गये थे। अब तो उन्हें यह भी शंका होने लगी थी कि जैसा भी लिया-दिया मकान है, कहीं इसे भी ये लोग छोड़ेंगे या नहीं क्योंकि बेटों की चाल-ढाल और बातचीत से कुछ ऐसा ही अन्दाजा उन्हें लग रहा था। दिवाली पर बिचला कह तो रहा था "''जाने कौन तुक देखी है आपने यहाँ अकेले रहने में! इस मकान को बेच-बाच टंटा काटो और किसी के भी पास चल कर रह लो। हम सब यहीं आ टिकें या बँधी रकम आपके पास भेजें, यह तो बड़ा मुश्किल है'' सम्भव ही नहीं है।" ''वे उसे देखते ही रह गये थे। कुछ नहीं बोले। चुप ही रह गये थे इस बार भी। कलेजे का घाव और भी टीस उठा था।

गली-मुहल्ले ने जोर दिया कि जाकर देखो तो सही बेटों के पास। कुछ तो उनका भी राज भुगतो! इलाज भी हो जायगा और मन भी बहल जायगा। सभी को पहले उन्होंने चिट्ठियाँ डालीं। लगे हाथों बुआ के लड़के रतन को भी डाल दी। सभी में लिख दिया कि इलाज कराने और आराम करने आ रहा हूँ"''सबसे पहले बड़े का उतर आया कि ''"इधर मौसम पहले ही खराब है। बीमार और गये तो! बेकार देही बिगड़ेगी न!''''''" दूसरे दिन दूसरे बेटे का लिखा मिला कि''''"शीला अस्पताल में भर्ती है। पहले ही परेशान हूँ। आपकी सेवा नहीं हो पायेगी। व्यर्थ दुख पाओगे''''" तीसरे ने खबर दी''''"पिताजी! पे ही नहीं मिली है। आप दो सौ रुपये भेज दो तो कुछ काम चले''''।" बुआ के रतन ने खबर दी कि''''"पेट में दर्द रहता है। चिन्ता न करें, अब कुछ आराम है। आप डाक्टर चड्ढा से ठीक चेकअप क्यों नहीं करा लेते। आपने तो हमेशा उसके बच्चों को यों ही पढ़ाया है, कितना अहसान आपका उस पर!''" सबसे अन्त में छोटे ने लिखा कि

माताजी वैसे ही घबराती हैं। देखना ...बंद हो जायेगा प्रान। कोई गम डाक्टर तो इधर है नहीं ... और ! देख लिया जायगा ... ।"

बुआ के दाँत का दर्द आदमी जिस तरह था वही बता रहा था कि... "मास्टर जी पेट-वेट में तो कुछ दर्द था नहीं लगता है। हाँ, उनकी बहू जरूर कह रही थी चाची से कि...' पहले ही महंगाई ने कमर तोड़ रखी है। जाने कैसे दिन कट रहे हैं न। अब ऊपर से बड़े जो आ गये तो मौत ही समझो। अच्छे भले हों तो चलो इधर-उधर मे गोद बैठा लें, पर बीमार काया का क्या ! कुछ और ऊपर-नीचे हो गया तो अन्न-दाना का खर्चा और बाँधो।" ...चुप कर दिया था उन्होंने उस आदमी को ! बहुत सुन लिया था...उसमे आगे नहीं। भतीजे की दिक्कत बहुमूल्य हो गई थी।

ममता ने जाने क्या हिलोर मारी कि छोटके के आ पहुँचे। दो दिन में जान लिया कि एकदम बोझ समझ रहे हैं ये लोग उन्हें। घर में अजीब-सा सन्नाटा छा उठा है। टीटू और पमी भी तो दूर-दूर से ही बाबा को घूरते हैं, भला क्यों ? कारण की गुत्थी सुलझ गई थी कल शाम, जब बहू पड़ोसन से कह रही थी....."हमने तो लाली की माँ, अपने बच्चों को रोक दिया है। बाऊजी हैं कि खींच-खींच कर मुँह पर चिपटाते हैं। खुद तो रात-दिन खौं-खौं करते रहते हैं, इन्हे और मारेंगे।....अब क्या बतायें बहन ! हमें क्या पता था कि चिपते ही चल देंगे। पमी के पापा ने तो दुनिया दिखावे को लिख दिया था। अब तो खैर गले बन्धा है, देखो कब तक....."....बस.... बस.... उन्होंने कानों में उँगलियाँ डाल लीं। बिस्तर में जैसे जड़ हो गये थे। मन में हाहाकार मच गया। दिमाग में धूलभरी आँधियाँ उठ पड़ीं। लगा कि जैसे पूरी जिन्दगी ने उठकर उनके मुँह पर चाँटा मार दिया हो। शरीर का पुर्जा-पुर्जा क्या यही सुनने को घिसते रहे थे ! यों ही पागल बने भागते रहे ! जीवन की सारी पूँजी क्यों व्यर्थ में घूरे पर लुटाते रहे ! सब कुछ सजीव होकर जैसे उन्हें दुतकार उठा था।

अब सब याद आ रहा है। परसों दाढ़ में कितना दर्द था। दलिया के लिये कहा था, लेकिन वही रोटियाँ सामने परोस दीं ! चबाई नहीं गईं तो भूखे रह गये। दूध में गोलियाँ लेनी थीं, पर कहाँ मिला दूध !

एक क्षण के लिये भी अब यहाँ रुकने को जी नहीं चाह रहा था। कैसे उड़कर पहुँचे अपनी उसी एकान्त कोठरी में, जहाँ मूँज की खाट बिना पल्लों वाली खिड़की के पास बिछी होगी। ओह ! भाग्य ने बड़ा धोखा किया ! क्यों आये यहाँ ?... भला उसका उत्तर भी क्या था ! प्रश्न ही उपहास करता-सा लगा। कमाल है ! एक बाप अपने बेटे के पास क्यों आया ! है भला कोई उत्तर ?...फिर !...फिर क्या !...एक सूना रेगिस्तान • एक हहराती प्यास...सर्वहारा जिन्दगी की एक जीवित लाश... और...और...कुछ नहीं।

दो दिन हो गये अपने से लड़ते-टूटते !

ओह !...याद करके भी जी दुखी होता है...तेज बुखार में ही घर से चल पड़े थे। क्या करते वहाँ रहकर ! केतकी मेले-तमाशे को, खाने, घूमने, अच्छा पहनने को तरस गई, लेकिन वे हमेशा उसकी तिल-तिल भर इच्छाओं का कर्त्तव्य, मर्यादा और लोकलाज के बोझों में दबाते रहे। एक बार सिनेमा के लिये कितनी जिद कर बैठी थी..."अजी रहने भी दो। चौड़े बार्डर की धोती और गले की मटरमाला को कहते-कहते थक गई, पर तुम्हें तो दुनिया के गड्ढे भरने से फुरसत कहाँ रही। पिछवाड़े की सोना कह रही है कि सनीमा न देखा तो कुछ न देखा। चलो इसे तो दिखा दो..."...पर ले गये थे क्या उसे ! यहाँ भी शर्म-हया आड़े आ गई। सोचा...कोई क्या कहेगा ! लड़के वाले बोले मारेंगे कि बाऊजी को ये क्या मटरगश्ती सूझी ...सो केतकी यहाँ भी पछते में रही।' उसी केतकी के बेटे-बहू उन्हें बोझ मान रहे हैं... बच्चे दूर रख जाते हैं इस सड़ी काया से ! वो रतना की बहू क्रिया-कर्म की भी सोचने लगी...अच्छा ही तो हुआ कि वह चली गई जल्दी...वरना माया पीट लेती।

बुखार में ही चल पड़े थे......

हमेशा इसी तरह भागे फिरे...पहले दूसरों को सुख देने के लिये... और अब अपने लिये एक सुख की साँस खोजने के लिये। हमेशा शीतल छाया के लिये गोखरू भरे रास्तों में भटकते फिरे। एक बूँद प्यार-सहानुभूति के लिये लगा कि अथाह रेतीले समुद्र में जैसे जिन्दगीभर गोते लगाने रहे हों !

बुखार की तेजी में ही हुनते-काँपते स्टेशन पर आकर बेंच पर गिर-से पड़े थे। एक कुली ने आकर उन्हें पूछा था...शायद बहुत अच्छा आदमी था

उन्होंने उसे एक रुपया दिया था कि उन्हे दूध ले आये और खुद भी चाय पी ले। गाड़ी मिलने मे पूरे तीन घण्टे की देर थी। बेटे के शहर से बस में चलकर यहाँ आये। गाड़ी बदलनी होगी…हिम्मत कहाँ थी! यही कुली अब सहायता देगा! हाथ-पैर टूटे जा रहे थे। दूध पीते ही पेट में हूल-सी उठी। वे बाहर दौड़े थे "और निढाल से होकर फिर बैंच पर औंधा गये थे… कुली बेचारा सुन्न हाथो को मल रहा था।

… तभी वह अनहोना चमत्कार घट गया। वो तकलीफ भूल गये थे क्षणभर को… सन्न रहकर आँखें फाड़े ही तो देखते रह गये थे…अरे! क्या था वो चमत्कार! …वो कौन उनके उपेक्षित पैरो पर झुका हुआ था! … कौन! वो काँपते ओठों से बोल पड़े थे "तुम तो इकराम हो न!" क्यो बेटे! इकराम हो न! भूल तो नही रहा हूँ न!…इधर कहाँ हो!… पाँव छोड़ो बेटे!…आह!…" जी जाने कैसा तो होने लगा था जब वह उनके दमे से हाँफते सीने पर हाथ फेरता-फेरता बोला था "हाँ, गुरुजी! मैं वही इकराम हूँ जिसे आप हमेशा खूब पढ़ने के लिये, खेलने के लिये और अच्छा बनने के लिये कहा करते थे…लेकिन आपको यह क्या हुआ है!" आपको तो बड़ा तेज बुखार है सर! मैं यहाँ अपने दोस्त को तार दने आया था। अभी तो ट्रेन आने मे बहुत देर है, …फिर आप ऐसी हालत मे सफर कैसे कर पायेंगे…आइये, वो सामने सड़क पर मेरा कमरा है…जी,…कुली सामान उठा लेगा" आप मेरे स्कूटर पर बैठ लें…दो मिनिट लगेंगे सर!…नहीं, नहीं…वाह! यो कैसे जा सकते हैं आप बीमारी में!" " एक साँस में क्या तो जाने कह गया था वह। उनके कान तो गूँगे-से हो गये थे। प्यार, रंज, पश्चाताप और जाने कैसे-कैसे गड़मड़ ख्यालों से उनके होंठ थरथरा उठे थे…उनका शिष्य…प्यारा विद्यार्थी…इकराम…ओह!…क्या था सब कुछ! कौनसा रिश्ता! बेवकी, देख मैं अनाथ हूँ…! रात कैसी बेचैनी थी! सारा शरीर जैसे आग की लपटों में झुलसा जा रहा था।…ईश्वर! ये कौन है, जो मन से सेवा में रिझा जा रहा है! न खाने की सुध, न आराम की फिक्र! इतनी सेवा! इतना जतन! माँ की तरह ममता लुटाये दे रहा है…वे सारा तरफ कैसा बाजार सजाया है… …अंगूर, सेब, दूध……… दवाइयाँ……आह ऽऽ! बुखार में बहुत तेजी थी…डाक्टर जाने क्या बड़-बड़ा रहे थे! साँसें टूटती जा रही थीं। डॉक्टर का बैग लेकर इकराम बाहर

गया था……"नहीं, नहीं डॉक्टर साहब ! अभी भला कैसे जायेंगे। सवाल ही नहीं है जाने का ! बेसद बिगड़ी सेहत है। आप इनका माकूल इलाज करें। एकदम ठीक करना है इन्हें। ये मेरे बड़े काबिल उस्ताद रहे हैं। मेरे दिल में इनके लिये बड़ी इज्जत है। मेरा फर्ज है डाक्टर साहब यह तो……"

उधर जाने वे किस दुनियाँ में विचर रहे थे……क्या-क्या बोल रहे थे……कौन है ये मेरा केतकी ! … देखले तो…ये निपट रेतीले मरुधर में गया कहाँ से वह आई है… ये कैसा प्यार का दरिया डुबो रहा है मुझे ! कौन है केतकी यह ! कौन है ये मेरा ! … बेटा ! पुत्र ! …पुत्र की भला क्या परिभाषा है ! …गाडी आ रही है सुनो, केतकी…गाडी आ गई है चलो बैठें…… इकराम ने अपनी गोदी में उनका सिर रखकर गीले पानी की पट्टी रखी…एक घण्टा… दो घण्टा… दवाई खिलाई…रस पिलाया… थोडी तेजी कम हुई… आखें खुली। उसकी गोद की गर्माई पाकर बड़े प्यार से उसे देखा … जाने कौनसी खुशी उछली कि दो बूँद उसके हाथों पर ढुलक पड़ी।

4

बौना

अमर मेवाड़ी

* * *

वह षड्यंत्री था !

वह जिस प्रतिष्ठान में नौकर था उसको वह छिन्न-भिन्न कर देना चाहता था ! वह चाहता था कि उस प्रतिष्ठान के परखच्चे उड़ जायें, पर वह ऐसा क्यों चाहता था, यह मैं आज तक नहीं समझ सका। जैसी उसकी इच्छा थी यदि वह पूरी हो जाती तो उसे कुछ लाभ होता ऐसा मैं नहीं सोच पाया। उल्टे उसकी जिन्दगी एक रेगिस्तान बन जाती और वह उस रेगिस्तान में तड़प-तड़प कर जान दे देता।

उसके दिमाग में हर वक्त एक न एक षड्यंत्र का प्रारूप बनता रहता और वह उसे सफल बनाने में अपने परिवार की समस्याओं से भी अधिक जुटा दिखाई देता। यहाँ तक कि उसकी रातों की नींद उड़ जाती, दाढ़ी के बाल बढ़ जाते और उसका चेहरा [illegible], तीन-तीन दिन तक के लिए टल जाता। अन्त में जब उसकी योजना धराशायी हो जाती तब वह बगल के

मोर की तरह नाच-कूद कर अपने पाँवों की ओर देखता और खिसिया जाता।

जिस दिन उसकी कोई योजना विफल हो जाती तब उस दिन तथा उसके अगले चार-पाँच दिनों तक उसकी हरकतें देखने काबिल होतीं। उन दिनों वह बड़ा खोया-खोया और उदास रहता। बात-बेबात चिढ़ जाता। बच्चों को डाँटता, घर की चीजों को इधर-उधर फेंकता। यहाँ तक कि वह अपनी सुकुमार पत्नी तक को पीट देता। पत्नी को पीटते समय एक हिंसक पशु जैसा लगता।

उसकी पत्नी की सिसकियों की हल्की-हल्की आवाज बराबर बाहर के बरामदे में गूँजती रहती, उसके बाद सब शान्त हो जाता और समन्दर में उठे ज्वार-भाटे के बाद की स्थिति का आभास होने लगता।

षड्यंत्र उसकी जिन्दगी के अंग बन गये थे और उसकी दुनियाँ षड्यन्त्रों के दायरे में फँस कर रह गयी थी। प्रतिष्ठान में आने वाले हर नये से नये अध्यक्ष को वह अपने अहम् का निशाना बनाता और बेबात ही उससे उलझ पड़ता।

वह अपने आपको लेखक कहता था और अपने प्रान्त की क्षेत्रीय भाषा का स्वयं को मसीहा समझता था। समझता तो वह अपने आप को बहुत कुछ था, पर दरअसल उसमें ऐसा कुछ था ही नहीं। उसका कोई अध्ययन नहीं था, विचार नहीं थे, दृष्टि नहीं थी। उसके यदि कोई विचार या सिद्धान्त थे भी तो उनका रंग स्थायी नहीं था, वह अपने विचारों पर नित नये कलाबत्तू टाँकता रहता था।

मुझे याद है चौथे आम चुनाव के समय एक प्रतिक्रियावादी पार्टी के लोगों ने इन्दिराजी के भाषण के समय पत्थर उछाले थे, तब वह बहुत खुश हुआ था। यहाँ तक कि उसने तालियाँ बजायी थीं और अपने एक लेखक मित्र को चुनाव में हराने के लिए जी-जान से जुट गया था। कुछ दिनों बाद जब बांगला देश आजाद हो गया तब वह इन्दिरा-भक्त बन गया था और हर समय दोस्तों के सामने इन्दिराजी की कीर्ति-पताका फहराया करता था। इसके दो-चार माह बाद उसमें एक बड़ा परिवर्तन दिखाई दिया। अब उसकी बात-चीत का मुख्य विषय वियतनाम होता। वह हर वक्त वियतनाम के लिये मुक्ति की दुआएँ माँगता। वियतनाम के साथ-साथ अब उसकी ज़बान पर मार्क्स और लेनिन भी आ विराजे थे। वह अपनी बात चीत के मध्य में

कभी-कभी मार्क्स और लेनिन को भी उद्धृत देता और सामने वाले पर अपनी विद्वत्ता का सिक्का जम जाने का भ्रम पाल लेता।

अब वह अपने आपको वाम-पंथी कहने लगा था। उसके मुँह से जब ये सब उद्धरण सुनता तो व्यंग्य से मेरे चेहरे पर मुस्कान बिखर जाती, पर अन्दर ही अन्दर उस कायर व्यक्ति के प्रति मेरे मन में एक आक्रोश उमड़ता रहता। मेरे चेहरे की मुस्कान देख कर वह अपने आपको आश्वस्त महसूस करता और खुश-खुश दीखता।

उसे वामपंथी कहलाने में बड़ा आनन्द आता था। पर वास्तव में था वह घोर दकियानूस। उसके घर की दीवारों पर जगह-जगह लक्ष्मीजी के चित्र टँगे थे। उसकी पत्नी हर साल करवा-चौथ का व्रत करती थी और वह प्रातःकाल उठकर हनुमान-चालीसा का पाठ किया करता था। वह आत्मघोषित वामपंथी था। यह उसकी विवशता थी कि वह अपने को वामपंथी कहे, क्योंकि उसके इर्द-गिर्द का माहौल ही कुछ ऐसा था। यदि वह अपने चेहरे पर वामपंथ का मुखौटा नहीं चढ़ाता तो उसका अस्तित्व ही समाप्त हो जाता।

पर उसका अस्तित्व था ही कहाँ ! मैंने देखा था एक सेमीनार में कई लेखक इकट्ठे हुये थे। वहाँ उसका कोई मूल्य और महत्व नहीं था। वहाँ वह सिर्फ एक क्लर्क था और क्लर्क का दायित्व निभा रहा था। वहाँ कई लोग उसे जानने तक नहीं थे और जो जानते थे, वे उससे अपने यात्रा-भत्ते का हिसाब पूछते रहते थे। वह उन्हें हिसाब के साथ-साथ कार्यालय की गोपनीय बातों की जानकारी भी देता रहता था। यह उसकी आदत थी। वह अपनी इस आदत का अपने बॉस के खिलाफ बड़े सलीके से उपयोग करता था।

एक बार इसी बात को लेकर एक अध्यक्ष ने उसे चार्ज-शीट देदी थी तब उसने हंगामा मचा दिया था और प्रान्त के कई साप्ताहिक पत्रों में अध्यक्ष के विरुद्ध अपने दोस्तों के वक्तव्य छपवा दिये थे, बिना दोस्तों से पूछे। मेरे साथ भी ऐसा ही हुआ था। मैं जब उससे मिला और अपनी नाराजगी जाहिर करते हुये किसी दैनिक में अपनी ओर प्रतिवाद छपवाने की धमकी दी तब वह बहुत गिड़गिड़ाया था।

गिड़गिड़ाने की भी उसकी एक अदा है। मुझे एक साप्ताहिक के सम्पादक ने बताया था कि वह उसके सामने एक बार कितना गिड़गिड़ाया

था। उसकी पहुँच साप्ताहिक पत्रों में आगे नहीं थी। यह पहुँच भी उसने सम्पादकों के सामने गिड़गिड़ा कर, उनसे दोस्ती गाँठ कर और लम्बी-लम्बी चिट्ठियाँ लिख-लिख कर अर्जित की थी।

वह स्वयं को साप्ताहिक पत्रों का राजा कहता था। वह राजा था या नहीं, यह मैं नहीं जानता, पर यह अवश्य जानता हूँ कि खूसट से खूसट और नये से नये लेखक से लगाकर भ्रष्ट से भ्रष्ट गलेबाज कवि और साधारण से साधारण साप्ताहिक पत्रों के सम्पादक उसके यहाँ टिकते थे।

मैं भी उसका दोस्त था। वह था भी इतना काइयाँ कि लोग उसकी चटपटी बातों को चटखारे ले लेकर सुनते और उसकी लफ्फाजी के जाल में फँस जाते।

वह सामने वाले की पीठ में छुरा भोंकने के लिए अवसर तलाशता रहता, पर सामने वाले को इसका आभास तक नहीं होता। वह किसी का अहित कर देता तब भी कोई इस बात पर यकीन नहीं कर पाता कि यह सब उसका षड्यन्त्र है। क्योंकि वह अत्यधिक धूर्त और चालाक था। दोस्त और दुश्मन दोनों से मिला रहता।

मुझसे दोस्ती गाँठने में भी उसका स्वार्थ छिपा था, इसकी जानकारी मुझे पिछले दिनों हुई थी। एक दिन पहले मैंने अपने कुछ खास दोस्तों के साथ जमकर शराब पी थी। दूसरे दिन जब उसे मालूम हुआ तो उसने बड़े, अधिकारिक ढंग से अपना विरोध प्रकट करते हुए कहा था—"सुनो, तुम्हारे व्यक्ति के साथ मेरा कोई रिश्ता नहीं है। तुम एक साहित्यिक पत्रिका के सम्पादक हो इसलिए मेरा तुम्हारे सम्पादक से सम्बन्ध है, बस।"

मैंने उस पोंगा पंडित की बात सुनकर एक जोरदार ठहाका लगाया और उसे ऊपर से नीचे तक देखने लगा।

मेरे ठहाके से उसने स्वयं को मर्माहत महसूस किया। शायद उसने सोचा हो कि मैं उसकी बात सुनकर शर्मिन्दा हो जाऊँगा या पश्चाताप करूँगा। पर जब ऐसा कुछ नहीं हुआ तो वह गमगीन और उदास हो गया और बड़बड़ाता हुआ अपने घर की ओर चल पड़ा।

उस दिन अपने घर की ओर जाता हुआ वह बौने शरीर वाला आदमी मुझे स्वभाव में भी अत्यधिक बौना लग रहा था।

किसी अटपट जंगल में बसन्त आया हो।

मिलाई हुई सितार की तरह उसका यौवन सुर में आ गया था। अंग-अंग पर एक रोशनी पुत गई थी। आखों में लज्जायुक्त आनन्द की बिजलियाँ कौंधने लगी थी। मेरी तरफ वह एक विशेष अर्थ भरी दृष्टि से देखने लगी थी। *मुझे उसका यह मौसमी रूप कुछ भाने लगा था। लेकिन जल्दी ही मेरी ललक* पर पहरे लग गये थे। माँ उसे मुझसे अलग रखने लगी थी। उसका कुछ अधिक ध्यान रखने लगी थी। उसे कुछ भी काम नहीं करने देती थी।

जब उसके पहला बच्चा हुआ तो मुझे लगा यह मेरे रोम की कलियाँ, साँसो की सुगन्ध, अंग की चाँदनी, चेहरे की धूप और गालों के इन्द्र धनुष को *छीन कर बना है और यह अनुभव होते ही मुझे उससे एक प्रकार की डाह* हो उठती।

वह विजयिनी की तरह उसे इस इस प्रकार छाती से चिपकाये रहती, जैसे उसने मेरा सारा धन लूट कर अपनी गोदी में भर लिया है। जैसे उसे मुझसे कुछ नहीं लेना है। कुछ नहीं पूछना है।

फिर कुछ वह अलग हो गई। यानी उस गोद वाले के साथ अधिक रहने लगी। वह कुछ बदल-सी गई, यानी अब जैसे कुछ बडी हो गई, कुछ अच्छी भी हो गई। जैसे अब ऐसी कुछ बुरी नहीं रही। मन होने लगा कि *उसके पास थोड़ी देर बैठा जाय। लेकिन वह जो उसकी गोद में था। जिसे* देखकर मेरे बचपन को सीमा-ज्ञान होता था। लगता था जैसे यह स्थिति इतनी जल्दी क्यों ?

घर में आते ही मेरी मस्ती पर लाज के पहरे लग जाते थे। माँ अथवा पिताजी के पास उस नन्हें से जीव को देखता तो उल्टे पाँव आगन पर से निकल जाने का मन होता। कम से कम उस समय उनके सामने तो कभी पड़ता।

उसे लेकर वह कुछ इस तरह देखने लगी थी, जैसे सारा स्वामित्व अब उसी का है। जैसे उसने मेरी आत्मा को तोता बनाकर पिंजरे में रख लिया है। जैसे अब मेरा कोई अस्तित्व नहीं।

मैंने कई बार बात ही बात में कहा भी''''

आजकल बहुत बदली-बदली लगती है। [illegible]
मात्र इतना ही ग्रहण किया जैसे आजकल वह कुछ आकर्षक और अधिकार-युक्त दिखाई देती है और यह सोचकर हर बार गर्व से उसका चेहरा सुर्ख हो गया।

अब उसने रथ की वल्गा बिलकुल छोड़ दी थी। और रथ में पसर कर बैठ गई थी। अश्व फिर किसी सारथी के लिए मचल उठे थे। उनकी चपलता दिग्भ्रमित-सी राह के इस मोड़ पर अड़ गई थी।

मैं ठगे गये यात्री की तरह उसकी ओर और उसके गोद वाले की ओर देखता ही रह जाता था। अकेले में वह उसे मेरी ओर बढ़ाती... "लो म....।"

तो मैं एक प्रकार के डर से कँपकँपाया उसके सामने से चला जाता। वह कुछ अवाक सी, कुछ उदास सी और कुछ गुस्साई-सी मेरी ओर देखती ही रह जाती।

बाऊजी सोच रहे थे मेरे रथ को कहीं किराये पर लगा देने के लिए। कई बार वह चुके थे कि अब यह बचपन छोड़ देना चाहिए, कि अब मैं बच्चा नहीं रहा, बच्चे का.........हूँ।

मैं कस्तूरी के मृग की तरह अपने चारों ओर फैलाई जाने वाली जाली को देख रहा था। वे जजीरें जो लाड़ से मेरे पाँवों में बँधने के लिए बढ़ी आ रही थीं। वे उपदेशात्मक वाक्य जो मेरे बचपन को दुतकार कर मेरे जीवन से बाहर कर देना चाहते थे। वह नन्हा-सा जीव जो मेरे मदोन्मत परीक्षित की छाती पर तक्षक की तरह कुंडली मार कर बैठ गया था।

वह दिन-दिन अधिक खुलती जा रही थी, अधिक सशक्त होती जा रही थी। अधिक अधिकार सम्पन्न होती जा रही थी। मैं भले ही लड़का रह गया था; लेकिन वह नारी हो गई थी। एक पूरी औरत। मुझे समझाने लगी थी, "अब आपको कुछ काम कर लेना चाहिए।"

काम का नाम सुनते ही मेरे शरीर पर चींटियाँ चढ़ने लगती थीं और मैं सोचने लगता, अब सवेरे उठते ही किसी के सामने जाना पड़ेगा, किसी अनजाने आदमी का कहना मानना पड़ेगा। दिन भर काम करना पड़ेगा। महीने भर बाद कुछ रुपये मिलेंगे और वे सब इसे लाकर देने पड़ेंगे और फिर मुझे उसे देखकर चिढ़ आने लगती कि जैसे यह मेरी सारी स्वतन्त्रता पर मुन्सरमात बन कर बैठ गई है।

विभिन्न प्रकार की पिन हाथों और मैं सोचता, क्या इसी सब की जीवन को चाह थी ? तो तुरन्त ही मेरा विद्रोही मन भड़क उठता। एक अस्वीकृति मेरे विचारों में तीव्र उठती और एक प्रतीक्षा फिर प्रबल होकर मुझे पगला देती।

अब मुझे उसका स्वरूप किसी मांसभक्षी लता-सा प्रतीत होने लगता था। जो शनैः शनैः मेरे अंगों को अपने पाश में बांधती जा रही थी और मेरा रक्तपान करने को मचल रही थी।

मैं जो किसी रजनीगंधा की डालियों में अपना अस्तित्व समर्पित करना चाहता था, उस रक्त-पिपासु लता के घेरे में आकर कसमसा उठा था, तड़प उठा था।

बाऊजी ने मेरा रथ तीन रुपया रोज पर एक सरकारी विभाग को किराये दे दिया। विभाग के अधिकारी ने तुरन्त लगाम हाथ में ले ली और घुमाघुमाकर चाबुक दिखानी शुरू की तो मेरे अश्व चौकड़ी भूल गये और तांगे के टट्टुओं की तरह आंखों पर पट्टी बंधवा कर नजर की सीध में चलने लगे। लेकिन भीतर ही भीतर एक विद्रोह अधिकाधिक प्रबल होने लगा, एक प्रतीक्षा अधिकाधिक घहराती गई। कई बार घोड़े रपट भी गये। अड़ भी गये। गर्दन छुड़ा कर भाग भी गये। लेकिन बाऊजी ने फिर मार-पुचकार कर जोत दिया। मां ने सर पर हाथ धर कर पुचकारते हुए सीधे चलने की सीख दी और उसने अपनी जकड़ अधिकाधिक सख्त करदी, क्योंकि अब उसकी डालियों को रक्त की गंध आने लगी थी।

पहले माह का किराया बाऊजी को ही दिया था। बाऊजी ने वह मां को दे दिया था, इस आदेश के साथ कि वह उसे बहू को दे दे। मां ने वह सब उसे सौंप दिया था। वह अपने लिए कुछ नये वस्त्र और शृंगार-प्रसाधन लाई थी। कुछ गोद वाले के लिए वस्त्र-खिलौने लाई थी। मुझसे भी पूछा था—

"आपके लिए भी एक कमीज पेंट सिलवा दूं....?" तो मैंने मना कर दिया था, "अभी तो है, रहने दो।" फिर भी एक कमीज का पीस वह मेरे लिए भी ले आई थी। मैंने उस पीस की तरफ इस तरह देखा था जैसे कोई नया बंदी जेल की जेल की पोशाक को देखता है। मुझे उस कमीज से घृणा हुई थी। मैंने एक अर्से तक उसे नहीं पहना था।

अब वह मुझसे प्यार का अभिनय भी करने लगी थी। शायद प्यार ही करने लगी हो। लेकिन मुझे वह अभिनय ही लग रहा था। वह मेरा कुछ ध्यान रखने लगी थी। जैसे सवेरे मेरे नहाने-धोने की व्यवस्था मेरे वस्त्रों की देखभाल और मुझे यथासमय भोजन कराने की लगन, फिर मुझे काम पर जाने के लिए द्वार तक छोड़ने आने की औपचारिकता और गोदवाले का हाथ अपने हाथ में उठाकर उसे, "पापा! टाटा!" सिखाने की प्रक्रिया।

पहली तारीख की उसे प्रतीक्षा रहने लगी थी। उसे ही क्यों! करीब-करीब घर में सभी को पहली तारीख की प्रतीक्षा रहने लगी थी।

हाथ में पैसा आता तो मेरी इच्छाओं के दलदल में भी कई कमल खिलने लगते। बहुत कुछ करने को जी चाहता और कुछ नहीं तो उन्हें निरर्थक व्यय करने का मन होता। मैंने महीने भर श्रम किया है इनके लिये। फिर मैं मन चाहा उपयोग क्यों न करूँ इनका? लेकिन मेरे इन खिलते हुये कमलों पर अक्सर एक प्रकार की सदाशयता का पाला पड़ जाता और वे भ्रूण मुरझाकर रह जाते; बल्कि मर जाते और मैं किसे कीले हुए जिन की तरह सारे रुपए बाऊजी को दे देता, बाऊजी माँ को दे देते और माँ उसे सौंप देती। फिर हर तरफ से उसी के नाम की पुकार होती—

"बहू....। जरा सब्जी के लिए पैसे देना।"

"भाभी"। आज फीस जमा करवानी है।"

इन्हीं में मेरी आवाज भी शामिल हो जाती, "अरे भई, कुछ जेब खर्च तो दिया करो।"

मेरे स्वभाव में, जैसे एक लहरा कर बहती हुई नदी जमने लगी थी। चारों ओर बड़े-बड़े हिम-खंड तैरते दिखाई देते थे। एक विवशताजन्य गाम्भीर्य उसकी रवानी पर छाता जा रहा था। एक अनचाहा परिवर्तन तेजी से पूरी व्यवस्था बदलने में व्यस्त था। मैं अपने आपको एक शान्त तूफान में फँसे तिनके की तरह अनुभव करने लगा था, जो मुझे एक निश्चित दिशा में तेजी से बहाये लिए जा रहा था और लाख छटपटाने पर भी उसका प्रतिरोध करने सामर्थ्य मुझमें नहीं थी।

मुझे लगने लगा था जैसे जीभ को छूने वाली हर चीज का स्वाद कसैला हो गया है। जैसे नासिका को छूने वाली हर सुगन्ध के साथ कोई

है, जिससे दृश्य सब धुंधले दिखाई देते हैं।

वस्तुओं के एक आकस्मिक बदलाव की हैरानी से मैं ग्रस्त था। समय जो वापस पीछे नहीं जाता उसे पीछे धकेल देने की व्यर्थ मानसिक कोशिशों से थका हुआ।

उसने अपनी आत्मीयता और अधिक नंगी कर दी थी। अधिकार को और अधिक निर्लज्ज कर दिया था। उसने मुझसे कहा था—

"कहीं अलग मकान ले लो। इन दो छोटे-छोटे कमरों में सबके बीच रहते हुए बड़ी शर्म आती है। दो मिनिट भी अकेले बैठकर कोई सलाह-मशविरा नहीं कर सकते।"

सुन कर मुझे इस प्रकार की खीज-सी हुई थी। बहुत कुछ कह देने का मन होते हुए भी मैंने उससे कुछ कहा नहीं था। खाली-खाली आँखों से उसे देखता रहा था और "सोचेंगे" कहता हुआ उसके सामने से सरक गया था।

उसे अपनी सलाह की ऐसी कटु उपेक्षा बुरी लगी थी। तब ही वह दूसरे दिन कुछ चढ़ी-चढ़ी थी। जैसे उसने चेहरे पर नाराजगी ओढ़ ली थी। वह ओढ़ी हुई नाराजगी औरों की अपेक्षा मेरे सामने रहने पर और अधिक गाढ़ी हो जाती थी। मैं उसका कारण समझ कर जैसे होठ ही होठ में मुस्करा देता और वह इस मुस्कराहट से जैसे भीतर ही भीतर भभक उठती।

एक बार विस्फोटक स्थिति में कहने लगी, "अब मुझसे यहाँ नहीं रहा जायेगा। यह भी कोई जिन्दगी है! घर नहीं हुआ, सराय हो गई!"

सुनते ही मेरी आँखों में क्रोध की रेखा आ गई थी। लेकिन माँ ने उसे तुरन्त देख लिया और एक अतिरिक्त उत्साह से बोली "बहू ठीक ही कह रही है, यहाँ के दो कमरे। हर वक्त विचारों की लजाई-लजाई रहना हो। किसी टेम तुमसे कुछ बात करना चाहे तो भरे घर में नहीं कर सके। दस-बीस रुपये में पड़ोस वाले लालाजी की हवेली में दो एक कमरे क्यों नहीं देख लेता।"

बाद में बाऊजी ने भी इसी बात की ताईद करदी कि मुझे सुविधा की दृष्टि से अलग मकान ले ही लेना चाहिए।

माँ खुद जाकर लाला के घर बीस रुपये में दो कमरे तय कर आई और मुझे मन नहीं मानते हुए भी पड़ौस वाले लाला के घर जाना ही पड़ा।

क्योंकि ऐसा कुछ अलगाव नहीं हुआ। माँ-बाऊजी, छोटे-छोटी सब इधर आते रहे। हम उधर जाते रहे, लेकिन जैसे भीतर ही भीतर सब कुछ एकदम बदल गया और लगने लगा कि इशारे से बुलाने पर चाँदनी कभी नहीं आती—चेहरे पर धूप का पसराव बहुत अस्थाई है। साँसों में दुर्गन्ध होती ही है इन्द्र-धनुष गले का हार कभी नहीं बनता""बाँस और बाँसुरी में बड़ा फर्क है और जिसकी प्रतीक्षा की जाए वह कभी नहीं मिलता।

6

"केवल एक सुबह"

हुलासचन्द जोशी

* * *

बस मैदान किस के हाथ रहेगा! स्पष्ट कुछ भी नहीं कहा जा सकता। तीव्र संघर्ष में कौन-किसको नीचे धकेल दे—भविष्यवाणी कोई मूर्ख ही कर सकता है।

पिछले कुछ दिनों से मैं भी लोगों की निगाह में आ गया हूँ। फिर भी पुरानों की अपेक्षा काफी नया हूँ ....। अभी पैर जमाने में समय लगेगा।

काफी लम्बे समय से विषय को नियन्त्रण में लाने का प्रयत्न कर रहा हूँ।

परिणाम!

कुछ भी रहे। मुझे सन्तोष है। विषय मेरी पकड़ में है।

शीर्षक पढ़ते ही मुँह से सीटी निकल गयी थी।

और! विषय दिमाग में घूमने लगा। दिमाग में उथल-पुथल-सी मच गयी थी।

भिनभिनाती दुपहर

जैसे लगता था—मैं धारा प्रवाह—विचारों के अनुसार-उतार-चढ़ाव लेता बोलता जा रहा हूँ। श्रोताओं की तालियों की गड़गड़ाहट से हॉल गूँज उठता है।

आज तक मैं अपने विषयों पर बहुत सफल रहा हूँ। कभी हड़बड़ाया-हिचकचाया नहीं। सफलता की सीढ़ी चरमरायी नहीं। कल की सफलता मेरा नाम दूर-दूर तक कर देगी""।

केवल कल के लिए—

सप्ताह भर पहले बीबी-बच्चों को उनकी ननिहाल छोड़ आया था। सारा काम असमय और बेतरतीब चल रहा है। जब तक लक्ष्य मिल नहीं जाता—साँस लेना मुश्किल है।

साँस कभी गर्म-कभी तेज-कभी सुस्त चल रही है। अजीब बात है।

मेरा विषय है—'मानवता और धर्म""।' खुशी से मैंने शीर्षक को चूम लिया था।

धर्म ने मानव को आज तक दिया ही क्या है?

धर्म ने मनुष्य को भेड़िया बना दिया"" ईर्ष्या और घृणा""आदमी-आदमी के बीच सीमा-रेखा धर्म ने खींची थी। विज्ञान के प्रतिपल बढ़ते कदमों को धर्म ने रोकना चाहा। किन्तु विज्ञान स्वयं में सत्य है। उसका लक्ष्य मानवता है। धर्म उसकी गति को नहीं रोक पाया है।

धर्म क्या है? स्वार्थी लोगों का पेट भरने और ऐश करने का साधन है। मानव हृदय के कोमल अंशों को छू कर मानवता को चट्टानों के नीचे दबा देने वाला पत्थर।

काश! धर्म की जगह केवल मानवता होती! करोड़ों इन्सानों का आपसी रिश्ता होता! भूखे-नंगे और बेबस इन्सान न होते। मनुष्य-मनुष्य का मूल्य जानता!

ऐसे तैयारी पिछले एक महीने से करता आ रहा हूँ। लिखता हूँ—अभ्यास करता हूँ और बड़बड़ाता हूँ। जो विचार मुझे पसन्द नहीं, उन्हें काट देता हूँ। कभी-कभी पूरा कागज ही फाड़ देता हूँ। फिर सब कुछ नया लिखता हूँ।

इस बीच खाना-पीना होटल में है। कब खाया—नहीं खाया। कुछ भी ध्यान नहीं।

मैंने अपनी कल्पना में कई वक्ताओं को उतारा। उन्हें सुना। फिर बहुत ही सुलझे विचारों से उन वक्ताओं को धराशयी किया। क्रिया-प्रतिक्रिया—प्रतिक्रिया-क्रिया चल रही है।

सभी वक्ताओं को अल्प समय में अपने-अपने विचार निचोड़ कर रख देने हैं।

फर्श पर कागज ही कागज ही कागज बिखरे पड़े हैं। आप कमरे में घुसें तो यही समझेंगे, 'यह आदमी कागज चबाता है। कागजों पर जीवित है।'

बड़बड़ाता इतना हूँ कि आप तरस खायेंगे, 'कल तक का दिन सही-सलामत गुजर जाए तो अच्छा है।'

मजदूरों को घास काटते—खान खोदते—पत्थर फोड़ते—बोझा ढोते पसीना आता है और मुझे—लिखते, बड़बड़ाते पसीना आ रहा है।

और—

यह सोच कर पसीना बहने लग जाता है, 'कल कोई स्थान न मिला तो।'

वैसे मैं कई बार प्रथम आ चुका हूँ। मेहनत इससे चौथाई भी नहीं की थी।

कल की प्रतियोगिता की बात कुछ और है।

अध्यक्षता भारत के प्रसिद्ध विद्वान कर रहे हैं।

जब सारी दुनियाँ खर्राटे भर रही है। मैं जागता हूँ। शीर्षक के चारों ओर पहरा देता हूँ। कभी-कभी तो स्वयं ही हँस पड़ता हूँ। आदमी नाम के लिये क्या से क्या हो जाता है? कैसी हालत बना लेता है?

इन दिनों दोस्त से मिला नहीं। महीने भर से एक भी सिनेमा देखा नहीं। अखबार के दर्शन नहीं.......।

इन दिनों मेरे पास कोई नहीं आता। व्यवहार इतना रूखा हो चला है कि कोई भूल से आ भी गया तो ज्यादा देर टिका नहीं। उन्हें यों ही ठण्डा-मीठा करके निकाल देता।

आज की रात आखिरी रात है। कल सुबह आठ से ग्यारह बजे खेल खतम।

कौन हो सकता है ?

खट्-खट् की आवाज पहले धीमी और फिर तेज होती गयी।

मैं नहीं उठा।

शायद जोर से खट्खटाकर ही चला जाए।

खटखटाहट बढ़ती गयी। हजारों गालियाँ बड़बड़ाता मैं दरवाजे की ओर बढ़ा।

जोर के झटके से दरवाजा खोला, 'कौन है ?'

सामने एक दयनीय-कान्तिहीन-स्थिर और शान्त भाव से एक व्यक्ति खड़ा था। मैंने चेहरे को तानकर, आँखें लाल कर और खीज कर कहा, 'क्या चाहिए ?'

'रोटी !' उसका छोटा-सा उत्तर था।

धीमी आवाज मुश्किल से कानों तक पहुँची।

'भीख माँगता है। अभी तो जवान दिखता है। हाथ-पैर भी सही-सलामत हैं। थके-माँदे जरूर हो। फिर भी मेहनत कर सकते हो। आखिर तुम भी मनुष्य हो। मानवता के नाम पर तुम ' ।' मैं कुछ और कहता उसके पहले वह मिनमिनाया, 'रोटी !'

वैसी ही धीमी और मरी-मरी-सी आवाज।

मैंने टालने के लिए कहा, 'कोई दूसरा घर देखो। मैं तो खुद होटल पर खाकर आता हूँ।'

मैंने सटाक से दरवाजा बन्द कर दिया।

कुर्सी को पीछे करके पैर टेबल पर फैला दिए। कुछ देर विचार की मुद्रा में बैठा रहा। एक-एक तर्क को दोहराने लगा। जैसे लाटरी की चकरी घूम रही है और नतीजा मेरा ही निकलने वाला है।

खट्-खट् की वही आवाज।

आखिर विघ्न पड़ा। देर तक खट्खट् होती रही। मैं भी डटा रहा, 'खटखटाए जा बेटा !'

सोता। आवाज आयी 'रोटी!'

मैंने समझाया, 'अरे भाई! क्यों तू तेरा और मेरा समय बर्बाद कर रहा है? यहाँ रोटी छोड़ कर अन्न का एक दाना भी नहीं है।'

मुझे क्रोध बहुत जल्दी आता है। आज नहीं आया।

मानसिक तनाव बढ़ जाने का भय था। मुझे कल तक सन्तुलन बनाए रखना है।

'साहब! एक रोटी मिल जाती, तो सुबह तक के लिए गुजारा हो जाता। काफी समय से एक दाना भी पेट में नहीं गिरा है।'

मुझे लगा जैसे मेरे सामने कोई आदमी नहीं मक्खी भिन-भिना रही है।

'भाई जान! तू भी अजीब आदमी है। रोटी कहाँ से दूँ? पेट फाड़ कर दे दूँ?' मैंने धीमे से कहा 'कोई और घर की तलाश करो। मैं तेरे लिए कुछ नहीं कर सकता। मेरे लिये एक-एक मिनट कीमती है। जितना समय तूने यहाँ बर्बाद किया— उतने में तो कहीं से रोटी प्राप्त कर लेता। अच्छा! अब जाओ। मुझे काम करना है।'

उस आदमी ने सूनी-सूनी आँखों से मुझे देखा। उसकी आँखों में कुछ था जरूर किन्तु मैं पहचान नहीं पाया। वह कुछ और गिड़गिड़ाए उससे पहले, मैंने दरवाजा बन्द कर दिया।

दरवाजे पर धड़ाम की आवाज आयी जैसे किसी ने बहुत भारी पत्थर रख दिया हो।

मैंने सोचा वह जा रहा है और यह आवाज उसके पैरों के धमाके से आयी है।...

लेकिन उस तक सब सोच बन्द हो गये थे। सब किताबों को छोड़— शरीर से छुटकारा हुए मानने के लिये दरवाजे की ओर आँख को इधर-उधर कुछ मटके दिए। फिर ओर से उबासी ली।

पत्रों को पलट कर सभी तर्कों को फिर से दोहराया। सूर्योदय होने ही वाला था। ताजी हवा लेने के लिए मैं दरवाजे की ओर बढ़ा। धीरे-धीरे दरवाजा खोलने लगा।

दरवाजा कुछ भारी-सा लगा—जैसे वह मुझ पर गिर पड़ेगा। सम्भालते-सम्भालते एक भारी चीज मेरे पैरों पर गिर पड़ी। मैंने सोचा दरवाजा जड़ से उखड़ गया है—किन्तु यह तो कोई मानव देह थी।

मैं हड़बड़ा कर भय से पीछे हट गया।

वह रात वाला भूखा व्यक्ति था।

मुझे सारी धरती घूमती नजर आयी। प्रतियोगिता का समय होने जा रहा था। मैंने मुड़कर अपनी टेबल पर दृष्टि डाली—वह भी घूम रही थी। उस पर पड़े सभी पन्ने फड़फड़ा रहे थे। जैसे अधमरे भूखे-नंगे इन्सान मरने से पहले थरथरा रहे हैं ...आखिरी बार।

जैसे मैं लाशों के ढेर के बीच खड़ा हूँ। लाशें कागजों को रोटी की तरह चबा रही हैं। कागजों की चरचराहट से आवाज उठ रही है—रोटी.... रोटी - रोटी।

उस देह को ढीक कर मैंने चादर डाल दी।

आसपास आवाजों की फुसफुसाहट का शोर उठने लगा। लोगों को ताजा समाचार मिल गया—चर्चा करने को। लोगों की भीड़ में, 'एक आदमी भूख से मर गया।'

शायद इसी समाचार पर राजनैतिक पार्टियाँ विधान-सभा में बहस कर सकेंगी।

होने को बहुत कुछ हो सकता है और कुछ न हो। सब कुछ समय और परिस्थिति पर निर्भर है।

वास्तव में कुछ नहीं हुआ। शोर जिस तेजी से उठा उसी तेजी से शान्त हो गया। शायद चुनावों में अभी देर है....। खैर!

मैंने अधीरता से कहा, 'डाक्टर साहब ! कोई आशा !'

डाक्टर ने एक बार नब्ज और देखी, 'आदमी मर चुका है।' मेरी आंखों से आंसू चू पड़े। इतने दिनों का आवेश क्षणभर में पानी की धार में बह गया।

7

मदारी-मास्टर

दिलीपसिंह चौहान

* * *

"लीजिए साहब ! ये आपके सच्चे और विश्वासपात्र अस्काउट । मैं बार-बार आपसे अर्ज करूँ हूँ के ये छोकरे बड़े बदमाश है और आये दिन कुछ न कुछ अस्कूल की चीजाँ इस कुई मे गिरा देते हैं और आप विश्वास नही करते हो । आज तो मैं रंगे हाथो पकड के लाया हूँ, अब तो मानोगे ?" विद्यालय के चपरासी ने बडी झुंझलाहट के साथ कार्यालय मे प्रधानाध्यापकजी को कहा ।

प्रधानाध्यापकजी की गर्दन अभी भी टेबल पर झुकी हुई है । वे बड़ी गिड़गिड़ाई भाषा मे विद्यालय निरीक्षक महोदय को सामान की पूर्ति हेतु प्रार्थना-पत्र लिख रहे हैं । लम्बा चौड़ा विद्यालय, किंतु सिवाय छात्रों के और किसी की अधिकता नहीं थी । सिनेमा का टिकट लेने की भांति दो-दो कक्षाओं को एक ही कमरे मे बैठाकर अध्यापको की कमी को पूरा किया जाता था तो कभी-कभी स्वयं ही घंटी बजा कर चपरासी की बागवानी के लिये

किसी किसी विद्यालय में अजीत के प्रभाव से भले ही कुएँ के ओजारों को जंग लग रहा हो, वरन् यहाँ एक पखवाड़े में पाँच आदर बाल्टियाँ बना रहे हैं तो एक सरकारी दस छात्रों की आशा बनी हुई थी। आए दिन डन्डिन्जैग्गी की रकम चपरासी को अनुपस्थिति में मिट्टी के कलशों के एवज में कुम्हारों के घर जाती है, सो दो ही बाल्टियों से पीछे और बच्चे सभी सीखे जाते हैं। प्रधानाध्यापक ने अपने प्रार्थना-पत्र की मांग-सूची के चौथे पृष्ठ की आखिरी पंक्ति पर ज्योंही ४ लोटों की संख्या लिखी कि चपरासी द्वारा घटना सुन कर उस संख्या को बढ़ा कर ५ कर दी।

"लोटा कुर्ई में गिरा दिया ?" अपनी गर्दन उठाते हुए प्रधानाध्यापकजी ने पूछा।

"मैंने नहीं गिराया," रोते हुए सत्यपाल ने जवाब दिया।

"मैंने नही गिराया, तो क्या यह तेरा बाप झूठ बोल रहा है ?" प्रधानाध्यापक ने कड़क कर कहा।

सत्यपाल डर के मारे कांपने लग जाता है। आज चपरासी बड़ा खुश है। पहले एक बाल्टी, तीन रस्से और कोई ४ लोटे कुई में पड़ चुके थे। मगर हर बार ऐसे ही शब्दों की मार उसे स्वयं को सहनी पड़ी थी। अबकी बार उसे उतना ही आनन्द आ रहा था जितना पहले छात्रों को, उनका पक्ष लेते हुए प्रधानाध्यापक के शब्दों को सुनने से आता था। यह एक ऐसा मौका हाथ लगा कि अपने घर पर रखी स्कूल की बाल्टी को भी कुई में गिरी बता कर सारी वसूलियाँ उस छात्र से करा सकता है। अब उसे किसी हानि का भय नही है। विद्यालय का सबसे बड़ा अधिकारी आज उसकी हाँ में है। *अब चाहे कुछ वाचाल बालप्रिय-शिक्षक उसके विपक्ष में क्यों न हों।* उसने गवाही के लिये बाहर खड़े छात्रों में से युधिष्ठिर की ओर संकेत करते हुए कहा :—

"होकम यह झूठ बोल रहा है, आप उस युधिष्ठिर को पूछिये इसने लोटा कुई में गिरा दिया है।"

तनिक मन में शंका हुई कहीं कमबख्त मना नहीं कर दे, नहीं तो मामला उल्टा पड़ जायेगा। ताते लोहे पर चोट से जोड़ जल्दी लगती है। मौके का फायदा उठाके चपरासी ने फौरन युधिष्ठिर से पूछा—

"... नही बोलते हो, भले ही तुम मस्काउट नही हो। क्यों ... था न लोटा ?"

खिलखिलाती गुलमोहर

"हाँ माटसाहब, इसने लोटा कुई में गिराया था। मैंने अपनी आँखों से देखा।" युधिष्ठिर ने आगे बढ़ कर गवाही दी।

युधिष्ठिर ने कहने को तो कह दिया, मगर मन ही मन सोचने लगा, चपरासी कहीं झूठ तो नहीं बोल रहा है! वास्तव मे मैंने तो इसे देखा नही। हाँ, मगर चपरासी ने इसी का नाम क्यों लिया? निश्चय ही इसी ने गिराया होगा और फिर नहीं भी गिराया हो तो क्या है! यही तो अवसर है बदला लेने का। इन स्काउट्स की प्रधानाध्यापकजी बेहद तारीफ करते है। इसलिये थोड़ी इनके मार भी पड़ जाय तो बैलेन्स बराबर हो जायेगा। अब कुछ भी हो, मुझे तो 'हाँ' करनी ही है।"

इधर चपरासी को अब थोड़ा होश आया। ललाट से पसीना पोंछा, एक लम्बी साँस ली। सोचने लगा, "चाहे लोटा कुई से बाहर निकले या नही, वरन् कम से कम मैं तो कुए से बावड़ी मे आ गया हूँ। यदि युधिष्ठिर ना कर देता तो क्या होता?" उसने प्रधानाध्यापक जी से कहा,

"साहब, अब तो मैं झूठ नही बोल रहा हूँ?"

प्रधानाध्यापक को सुन कर खेद हुआ। वे इतने दिन इसलिये छात्रों का पक्ष लेते थे कि शिकायत अक्सर बालचरो की आती थी तथा स्काउट का पहला नियम वे भी हृदय से जानते थे कि 'स्काउट का वचन विश्वसनीय होता है,' अतः वे उनके वचनों पर कैसे अविश्वास करते? इधर वे चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों के मनोविज्ञान से भी भली प्रकार से परिचित थे। 'कहीं कचरा पड़ा है तो वह छात्रों ने बिखेरा है और यदि कक्षा में टेबल कुर्सी पर कई दिनों की धूल जम रही है तो वह भी छात्रों द्वारा उसे बदनाम करने हेतु जानबूझ कर बिखेरी गई है। ऐसे दोषारोपण करते ये लोग नहीं हिचकिचाते। कहीं चपरासी की काली करतूतों से निरपराध बालक, व्यर्थ में न पिट जायँ, इसी भय से वे बालकों का ही पक्ष लेते थे। मगर अबकी बार तो शैतान रंगे हाथों पकड़ा गया है और गवाह भी है, इस पर भी वह झूठ बोल रहा है। यह कौनसा स्काउट? उन्हें भारी क्रोध आया और पास पड़े डंडे पर हाथ डाला। उस समय ट्रेनिंग मे पढ़े शिक्षा-सिद्धान्तों और बाल-मनोविज्ञान को ताक मे रख चुके थे। सहसा उनके मुँह से यह वाक्य निकल पड़ा, 'Spare the rod & spoil the child' और झपट पड़े १२ वर्ष के रोते और काँपते बालक पर। दो इधर और दो उधर, एक दो पीठ पर और

"हाँ साहब, पेन्सिल के अक्षर मिट भी सकते हैं।" एक दूसरे शिक्षक श्री शर्मा ने हाँ मे हाँ मिलाई।

"और हो सकता है मामला अदालत तक ले जाना पड़े।" तीसरे शिक्षक श्री आमेटा ने शंका प्रकट की।

"अदालत मे क्या ! चाहे सुप्रीम कोर्ट मे भी जाना पड़े तो मैं जाऊँगा, मगर सभी वस्तुओं की कीमत वसूल न कर लूँ तो मैं प्रधानाध्यापक नही।" प्रतिज्ञा करते हुए प्रधानाध्यापकजी ने कहा।

सब कुछ कहा जा रहा था, मगर प्रधानाध्यापकजी का हृदय सत्यपाल के खून को देख कर धुकुर-धुकुर कर रहा था। उनके मन मे डर पैदा हुआ, वही मामला सचमुच ही बढ न जाय। फिर भी क्योंकि उन्होंने अपराध स्वीकार कर लिया था, अतः उनका मनोबल गिरने से बच रहा था।

"नमस्कार साहब, नमस्कार साहब !" दोनो के पिताओ ने प्रधानाध्यापकजी को अभिवादन किया।

"पधारिये, विराजिये ! बड़े खेद की बात है कि हम जिन्हें आदर्श स्काउट मानते थे उन्ही की काली करतूतो ने आज आपको यहाँ आने का कष्ट दिया है।" प्रधानाध्यापकजी ने भर्त्सनापूर्ण शब्दो मे कहा।

"साहब, आप तो हमारे गुरु हैं, यदि इन बच्चो से कोई त्रुटि हो गई हो तो हम दोनो क्षमा चाहते है।" सत्यपाल के पिता ने हाथ जोड़ प्रार्थना की।

"त्रुटि क्या ? इन बदमाशो ने लोटा कुएँ मे डाल दिया है।" प्रधानाध्यापक ने कहा।

"तो साहब, हम निकलवा देंगे।" लक्ष्मणसिंह के पिता ने कहा।

"यदि कुएँ से कुछ निकल सकता तो पूर्व मे गिराई दो बाल्टियों, तीन रस्सियो और ४ लोटो को हम नही निकलवा लेते ?" प्रधानाध्यापक ने कहा।

"ऐसा क्या कारण है, साहब ?" सत्यपाल के पिता ने पूछा।

"कारण क्या ? पूरी २०० फीट गहरी है दो सौ फीट।" श्री शर्मा ने कहा।

"आप तो बयान लिखना प्रारभ करें पानेरी जी, जैसा नियम से होगा वैसा होगा।" प्रधानाध्यापक जी ने कठोर स्वर मे कहा।

"हाँ, सत्यपाल यह बताओ कि तुम लोटा लेकर कुएँ पर क्यो गये ?" प्रधानाध्यापक जी ने पूछा।

"लेकिन माफ करना, दूसरी चीजों का इससे क्या सम्बन्ध है ?" सत्यपाल के पिता ने पूछा ।

"यही कि एक का चोर सारे का चोर ।" प्रधानाध्यापक जी ने जवाब दिया ।

"हम एक के बजाय दो लोटे स्कूल में भेंट कर दें साहब, वह किस प्रकार का था ?" सत्यपाल के पिता ने पूछा ।

"नहीं आपको तो पैसे ही जमा कराने हैं ।" प्रधानाध्यापक जी ने कहा ।

"लेकिन पैसे जमा कहाँ कराने हैं ?" सत्यपाल ने पूछा ।

"कहाँ क्या ? स्कूल में " स्कूल में ।" प्रधानाध्यापक ने कड़क कर कहा ।

"क्यों साहब ?" सत्यपाल ने डरते हुए प्रश्न किया ।

"चूं कि लोटा तेरे बाप का नहीं था ।" प्रधानाध्यापक जी ने क्रोध से कहा ।

"नहीं साहब, लोटा तो मेरा ही था ।" सत्यपाल ने तत्काल से उत्तर दिया ।

"है""लोटा अपना ही था ?" सत्यपाल के पिता ने जिज्ञासा से पूछा ।

"हाँ, हाँ, अपना भरत वाला लोटा ।" सत्यपाल ने कहा ।

"लोटा तुम्हारा था ?" प्रधानाध्यापक जी का मुँह लटक गया ।

"हाँ गुरुजी मैं हमेशा पानी पीने के लिये साथ लाया करता हूँ । वह मेरा ही था ।" सत्यपाल ने कहा ।

"तो लोटा स्कूल का नहीं था ?" श्री पानेरी जी ने कलम रोक कर पूछा ।

बाहर से एक छात्र अपने हाथ में विद्यालय के दोनों लोटे बताते हुए कहता है, "स्कूल के तो दोनों लोटे ये रहे" ।

ooo

बात है सायंकाल रेडियो का स्विच ग्रान भी नहीं कर पाया था कि धांय-धाय की आवाज से सनसनी फैल गई। वह समझ नहीं पा रहा था कि अचानक यह हो क्या रहा है? रोने चिल्लाने की दर्दभरी आवाजें तीव्रतर होने लगी। वह किंकर्त्तव्यविमूढ सा खाट पर बैठा-बैठा सुनता रहा। सरिता, महमूद के घर खलीफा की शादी में शरीक होने गई थी। अचानक, सविता ने भयमिश्रित मुद्रा में भागती हुई घर मे प्रवेश कर कहने लगी—बैठे क्यो हो? महमूद के लड़के को तो सिपाही पकड़ ले गये हैं, तथा सारा असबाब लूटकर घर मे आग लगा दी गई है। आग ....क्यो लगाई आग? क्या आस-पास मे कोई बुझाने वाला नहीं है? अपनी की झड़ी क्या लगा रखी है? बाहर तो जाकर देखो—क्या हो रहा है? धीरेन्द्र हक्का-बक्का होकर घर से बाहर निकला रात्रि के गहरे अन्धकार मे खो गया। बाहर आग धू-धू कर जल रही थी चमकती चिनगारियाँ अत्याचारियो की बर्बरता का दिग्दर्शन कराती हुई अपनी निष्ठा का परिचय दे रही थी। चारो तरफ सन्नाटा छाया हुआ था। बीच-बीच मे रोने-चीखने की हृदय विदारक आवाजें शान्ति भंग कर रही थीं। धीरेन्द्र किंकर्त्तव्यविमूढ हो, गाँव की सारी गलियों में घूम गया पर बात करने वाला कोई नहीं मिला, जबकि आने-जाने वालो का तांता बँधा हुआ था किसी को भी बात करने तक की फुरसत नहीं थी। वातावरण आतंक से परिपूर्ण था सहसा नजदीक ही आदमियों की बातचीत सुनाई दी। उधर ही उसने अपने कदम बढाये। बिजली की चमक मे देखा—संगीनधारियों का समूह परस्पर विचार-विमर्श कर रहा है। बढते कदम पुनः विपरीत दिशा को बढ़ चले। पल भर मे सारी स्थिति समझ गया। दबे पाँव धीरेन्द्र पुनः अपने घर लौटा। क्या देखता है कि सारा घर सूना है। सामान इधर-उधर बिखरा पड़ा। सविता को आवाज लगाते-लगाते सारे घर मे घूम गया, पर सविता न मिल सकी। यह सब कब कैसे घटित हो गया? पागल की तरह बाहर दौड पड़ा उन्मत्त होकर भागने लगा—भागते-भागते गली के मोड पर किसी से जा टकराया। भयमिश्रित वाणी मे बोला—कौन हो? महमूद ने धीरेन्द्र की आवाज पहचानते हुये कहा—दादा मेरा तो सर्वस्व लुट गया। दुष्ट सैनिकों ने सारा असबाब लूट लिया, मेरे घर मे आग लगा दी। जाते-जाते रशीद को पकड़ ले गये। महमूद का हाल सुनकर धीरेन्द्र ने दिल कठोर कर कहा—महमूद, ये पिशाच जनभावनाओ को बन्दूक की गोली मे दबाना चाहते हैं। जनशक्ति को दबाया नहीं जा सकता है। देखना, यहां पुन नया

वाहिनी में भर्ती हो जाऊँ, जिससे एक पथ दो काज हो जायेंगे। मर गया तो मातृभूमि के ऋण से उऋण हो जाऊँगा और जीवित रहा तो खून का बदला खून से लेकर आत्म-सन्तोष प्राप्त करूँगा। देश को स्वाधीन कराने में मेरा भी तुच्छ सहयोग रहा, तो अपने को धन्य समझूँगा।

× × × ×

धीरेन्द्र फौजी वर्दी में मेजर शमसुद्दीन को सेल्यूट करने के उपरान्त कहता—मेजर साहब, दुश्मन चारों तरफ से घिरा हुआ है। किसी भी सूरत से बचकर नहीं निकल सकता। नाकेबन्दी जबरदस्त कर दी गई है। संचार व्यवस्था को काट दिया गया है। रसद-पूर्ति सम्भव नहीं है। इन घिरे हुये दुश्मनों के सामने सिवाय समर्पण के कोई चारा नहीं है। मेजर ने मुस्कराते हुये कहा—शाबाश, बहादुरो जी-जान से जुटे रहो। आजादी नारों से नहीं, खून से मिलती है। खून के आखिरी कतरे तक डटे रहो। आखिरी फतह हमारी होगी। धीरेन्द्र सेल्यूट कर पुनः अपने हैड-क्वार्टर पर लौट पड़ता है।

× × × +

सैनिक अस्पताल में खाट पर घायल सैनिक बेहोश अवस्था में पड़ा है। नर्स थोड़ी-थोड़ी देर के बाद मुँह में पानी डाल रही है। पाँच दिन के बाद मूर्च्छा टूटी। घायल धीरे-धीरे आँखें खोलने लगता है। कभी पुनः बन्द कर देता है। मानो किसी चिन्तन में लगा है। डाक्टरों ने सन्तोष की साँस ली, घायल के स्वास्थ्य में सुधार हो रहा है। कुछ दिनों के कठोर उपचार के बाद धीरेन्द्र ठीक होने लगा। अब निरन्तर अखबारों में युद्ध के उत्साहवर्द्धक समाचार पढ़ने लगा। विजय के समाचारों से धीरेन्द्र की प्रसन्नता का पारावार न रहा। सैनिक के लिये विजय तो अचूक औषधि है जिससे शीघ्र आरोग्य लाभ होता है। जिस प्रकार थका पथिक अपनी मञ्जिल नजदीक जान चाल तेज कर देता है उसी प्रकार धीरेन्द्र का उत्साह भी दिन दूना रात चौगुना बढ़ने लगा। लक्ष्य की प्राप्ति पर शरीर की पीड़ा भूलना स्वाभाविक ही है। अचानक खबर मिलती है कि दुश्मन ने हथियार डाल दिये हैं। सुखद समाचार को सुनकर देश में बिजली की तरह उत्साह की लहर दौड़ पड़ी। नर-नारी खुशी के मारे नाच-कूद रहे थे। हर गली हर सड़क नारों से गूँज रही थी। सैनिक अस्पताल में आज बड़ी रौनक है। सभी के मन में हर्ष छाया हुआ है। सभी बदर-बदरा नजर आ रहे हैं। हर्ष के आँसू हर किसी की आँखों से देखे

जा सकते हैं। अस्पताल में घायल सैनिकों को मुबारकबाद देने वालों का तांता बँधा हुआ है। महमूद भी अन्य लोगों की तरह देश के लिये कुरबानी देने वाले वीर सैनिकों को तोहफा देने अस्पताल में प्रवेश करता है। अनायास सामने खाट पर धीरेन्द्र बैठा नजर आता है। प्रसन्नता से बाछें खिल जाती है मानो उसका खोया धन पुन: प्राप्त हो गया है। हृदय की धड़कन तीव्र हो गई। महमूद दौड़कर धीरेन्द्र के गले में हाथ डाल कर लिपट गया। दिखने में दो अलग-अलग प्राणी, पर आत्मा एक थी दोनों का मन गद्गद्, वाणी मौन। दोनों मौन, पर दोनों की आँखों में मोतियों की बौछार।

9

सबक

मरनी रॉबर्ट्स

* * *

रघुवीर उस समय स्टेशन पर पहुँचा जब गाड़ी चलने ही वाली थी। झट-पट उसने सामान एक डिब्बे में फेंका और स्वयं भी भीड़ के उस घेरे में घुस गया जो दरवाजे से लेकर पूरे कम्पार्टमेंट में थी। अपने सामान की दुर्गति और स्वयं को भीड़ में फँसा पाकर उसे बुरी तरह खिजलाहट हुई। बैठने की बात तो ऐसे में वह स्वप्न में भी नहीं सोच सकता था। वहाँ तो खड़ा होना भी बड़ा कठिन हो रहा था। पसीने से भरे कपड़ों से आती दुर्गन्ध उसके जी में मिचली भी पैदा करने लगी। आगे-पीछे आने वाले धक्कों से परेशान हो गया। मन ही मन उसने अपने जीवन और जीवन में पैदा होने वाली परेशानियों को गाली दी। गाड़ी चल दी और थोड़ी हवा आई तो उसे कुछ राहत हुई।

"कहाँ जायेंगे आप ?" सामने खड़े एक नवयुवक ने पूछा, जो किसी कॉलेज का विद्यार्थी दिखाई दे रहा था।

उसका जी चाहा वह कह दे 'जहन्नुम में'....पर उसने धीरे से कहा "बोदा" "बोदा"....बड़ी दूर का सफर है आप बोर हो जायेंगे इस भीड़ में। "क्या करें जी, भाग्य में यह सब-कुछ लिखा है। किस देश में जन्म लिया है, सोचता हूँ कहीं अमेरिका या रूस में जन्मे होते तो कारों में घूमते, ऐशो-आराम की जिंदगी बसर करते" पर यह सब हमारे भाग्य में कहाँ, हम तो जिंदगी जीने के बजाय ढो रहे हैं....लगता है परेशानियों को निपटाने में ही जिन्दगी बीत जाएगी।" रघुबीर ने कहा। कॉलिज स्टूडेन्ट हंसा। रघुबीर को यह हंसी अच्छी नहीं लगी। वह बहुत कम हंसता है। उसके मस्तिष्क में हमेशा परेशानियों का एक बोझ सा रहता है। उसने कभी भी यह नहीं सोचा कि जीने के अलावा इस जिन्दगी में कुछ और भी करना है।

रघुबीर एक क्लर्क है। कुल मिलाकर दो सौ रु. मासिक उसकी आमदनी है। एक बीमार स्त्री है और पाँच बच्चे हैं। उसकी जिन्दगी में सुबह से लेकर परेशानियों और उलझनों की एक चेन सी रहती है। सदैव वह घर, स्त्री और बच्चों की चिन्ता में खोया रहता है। टाईप राइटर पर चलती हुई उसकी अंगुलियाँ बस एक मशीन की तरह काम किये जाती हैं और देखकर वह यह सोचता है उसका अपना जीवन भी एक मशीन है। कभी-कभी वह अपने जीवन पर रो उठता है जब वह देखता है दुनिया के रंगों को, बहुमंजिले इमारतों को और [illegible] को।....और तभी उसकी आँखों के सम्मुख घूम जाती है बीमार स्त्री की सांवली तस्वीर, लड़ते-झगड़ते गंदे कपड़ों में लिपटे पाँच बच्चों की एक टोली और बिखरा हुआ कमरा।

वह अपनी जिन्दगी को एक दायरा ही समझता है। वह दायरा रोज सुबह खुल जाता है और रात बहुत देर गए बंद होता है। इस दौरान उस दायरे में जाने कितनी लकीरें बनती हैं, और कितनी काटा-पीटी होती है। बस वह जानता है उसकी जिंदगी एक दायरा है।

कोई बड़ा स्टेशन आ गया। काफी लोग उतर गए वहाँ। कम्पार्टमेंट में कुछ [illegible] हो गया। खिड़की के पास उसे थोड़ा सा बैठने का स्थान मिल गया। चैन की सांस ली उसने। उसे लगा जैसे वह किसी घुटे-घुटे माहौल से [illegible] हो। कम्पार्टमेंट में उसने निगाह फेरी। कुछ लोग [illegible] करते। [illegible]

कहते, तुम लोगों के कारण, न जाने कितनों को परेशानी होती है, अगर सोना है तो सीटें रिजर्व करवालो ... । न जाने कैसे वह बैठा रहा उठकर गया नहीं । वरना ऑफिस में तो वह अपने सहकर्मियों से बात-बात पर उलझ पड़ता है । तू-तू, मैं-मैं के बाद हाथापाई तक बात पहुँच जाती है ।

एक दिन उसने ऐकाउटेंन्ट मोहन वर्मा के सिर में टिफिन खींच कर मार दिया था । एक हंगामा खड़ा हो गया था । बॉस ने बुलाकर उससे कहा था । यह ऑफिस है कोई अखाड़ा नहीं रघुवीर, आइन्दा ऐसा हुआ तो मुझसे बुरा कोई नहीं होगा ।

पर इसके बाद कितने ही आइन्दा आये और वह झगड़ता रहा । आखिर लोग उससे दूर रहने लगे । काम के अलावा और उससे कोई बात नहीं की जाती थी । इससे वह और खीज उठा था । इन फिरिएरिटी कॉम्पलेक्स से वह भर उठा था । घर जाते ही बच्चों को पीट देता था, पत्नी को गालियाँ दे देता था और घुटता रहता था अपने आप मे ।

रघुवीर अभी कोटा जा रहा है । उसकी काकी का देहात हो गया है मरने की सूचना मिलते ही उसे लगा था—एक और परेशानी का बड़ा पहाड़ उसके असहनीय अस्तित्व पर टूट पड़ा है । उसने ईश्वर को जी भर के कोसा था और यात्रा के लिये रवाना हो गया था ।

गाड़ी चलती रही और वह खिड़की के बाहर रात के सन्नाटे में डूबे पेड़ो के सायों को देखता रहा । दूर तक जहाँ भी उसकी दृष्टि जाती थी अंधकार की एक गहन पर्त दिखाई देती थी । उसे लगा जैसे यह अंधकार वैसा ही है जैसे उसके अपने अन्तर में अंधकार है और अन्तर का यह अंधकार दिन प्रति दिन गहन होता जा रहा है । प्रतिदिन उसके लिए समस्या के रूप में आता है, परेशानियाँ और उलझनों के रूप में बीतता है और सूरज ढलने के बाद मजबूरी की एक अमिट छाप छोड़ जाता है । वह मन ही मन कुढ़ता है, रोता है, खीझता है और टूट जाता है । प्रेम और स्नेह नाम की चीजें अब उसके जीवन में नहीं रही हैं । उसका जीवन एक अभिशाप बनके रह गया है ।

रघुवीर ने आँखें मूंद कर सिर खिड़की की चौखट से टिका लिया । विचारों का एक क्रंदन उसके मस्तिष्क में उठ रहा था । सहसा उसे अपना अतीत याद आ गया ।

वह एक बहुत महत्वाकांक्षी युवक था। सब उसके व्यक्तित्व से प्रभावित थे। कई प्रतिभायें भी उसमें थी। पढ़ाई में भी वह सदैव अच्छा रहा था। कालेज में इसका अपना एक अलग व्यक्तित्व था और उसका इतना प्रभाव था लोग उसकी बातों को मानते थे। गलत रास्तों पर वह नहीं चला था और न उसे गलत कार्य पसंद थे। सीमित दायरों वाली जिंदगी में वह मस्त था। वह सदैव एक उज्ज्वल भविष्य की कल्पना करता था। वह सोचता था—एक दिन वह आई. ए. एस. आफिसर बनेगा, उसकी अपनी दुनियाँ होगी—जिसमें दुःख नाम की कोई चीज नहीं आने पायेगी। लोग उसको सम्मान देंगे, और वह हर इन्सान से प्यार करेगा, सदैव अच्छाईयों को गले लगायेगा। उसकी दुनियाँ में—जीवन प्रेम और स्नेह का आधिक्य होगा।

बहुत अच्छे दिन थे वह। तभी उसके जीवन में एक दोस्त आया जीवनलाल। जीवनलाल एक भ्रष्ट चरित्र का और दुष्ट प्रकृति का लड़का था। रघुवीर के जीवन से उसके जीवन को कोई बात मेल नहीं खाती थी फिर भी रघुवीर को उसमें एक विशेष आकर्षण दिखाई देता था और वह मित्र बन गये थे। दांत काटी रोटी हो गये थे।

रघुवीर ने सहसा ही जैसे अच्छाईयों से आँखें मीच ली, वो कार्य जिन्हे वह बुरा समझता था उसे उनमें रस आने लगा। शराब, जुआ और वेश्यावृत्ति जीवनलाल के अंग थे और जल्दी ही रघुवीर भी इन सब बुराईयों में फस गया। एक ऐसा अजीब सा जादू था जीवनलाल की बातों में कि जो कुछ वह रघुवीर से कहता वह उसे करने को तैयार हो जाता। रघुवीर की जिन्दगी में अंधकार भर गया। पढ़ाई चौपट हो गई, आदर्श चूर-चूर होकर मिट्टी में मिल गये।

रघुवीर को उसके पिताजी ने बहुत समझाया, पर वह रास्ते पर नहीं आया और इसी बीच वह छाती पर बोझ लेकर इस दुनिया से विदा हो गये। भाईयों ने उसे घर से निकाल दिया।""और एक दिन जब उसे अपनी स्थिति का ज्ञान हुआ तो वह रो पड़ा अपनी हालत पर। उस दिन पहिली बार उसे पतन का अहसास हुआ और पता चला कि जीवनलाल ने उसके जीवन में जहर भर दिया था।""लेकिन बहुत देर हो चुकी थी।"" वह किनारे को छोड़कर मँझधार में आ गया था।""उसने जीवन को छोड़ दिया। बुरे कार्यों

को भी छोड़ देने की कसम खाई। और बहुत कुछ करना चाहा, पर वह कुछ नहीं कर पाया। जो कुछ भी करना चाहता उसमे उसे निराशा मिलती। झुंझला उठा वह असफलताओं से। परेशानियाँ और मुसीबतें उसे जर्जर बनाती रहीं। बड़ी कठिनाई से उसे एक फैक्ट्री मे नौकरी मिली, थोड़ी बहुत टाईपिंग वह जानता था।

लेकिन उसकी घिसटती हुई जिन्दगी में कोई बदलाव नहीं आया। उसका विवाह हुआ, पाँच बच्चे हुये लगातार। रोज नई-नई परेशानियाँ उसके जीवन मे अमर बेल की तरह लिपटती चली गई। जितना वह जीवन को सवारना चाहता था, वह उतना ही बिगड़ता गया। उसकी पत्नी रुग्ण हो ही गई। सौ मे सात प्राणियों का पेट नहीं भरता, पत्नी का इलाज नहीं करा पाता, बच्चो को अच्छे स्कूल नहीं भेज पाता।' उसने ५० रु पर एक पार्ट टाइम नौकरी की, पर इसमे विशेष लाभ होता दिखाई नहीं दिया और फिर वह सोचता रहा अपनी जिन्दगी के बारे मे। फिर वह ट्रेन की खिड़की की चौखट पर सिर रखे ही सो गया।

कोटा स्टेशन पर ही उसकी नींद टूटी। वह हड़बड़ाकर स्टेशन पर उतरा। रात का एक बजा था उस वक्त। ठंड बहुत बढ़ चुकी थी। उसने मफलर अपने कानो पर अच्छी प्रकार से लपेट लिया। उसके पास एक बिस्तरा और ट्रंक था और उसको काफी दूर जाना रेल्वे कॉलोनी मे जाना था। बहुत से कुली उसके पास जमा हो गये। उसने कॉलोनी चलने को कहा। सभी कुलियो ने मना कर दिया क्योंकि एक दूसरी ट्रेन आने वाली थी और वे कॉलोनी जाने के बजाय गाड़ी से सामान उतारना पसद करते थे, क्योंकि उनको जितना कॉलोनी जाने मे मिलता, उतना यहीं मिल जाता तो वे भला क्यो इतनी दूर जाते !....रिक्शे और ताँगे वहाँ जाते नहीं थे क्योंकि ब्रिज पार करना होता था। और दूसरा रास्ता बहुत दूर था।... ऊबड़-खाबड़ और कच्चा।.......

सभी कुली चले गये। तभी ठंड से ठिठुरता एक दुबला और बूढ़ा कुली उसके सामने आकर खड़ा हो गया। 'उसकी आँखों मे एक विशेष अनुरोध था। वह बोला—"मैं चलूँगा हुजूर कॉलोनी मे...।"

"तुम ?".....'उठा पाओगे इतना सामान ?' आश्चर्य से पूछा रघुवीर ने। "जिन्दगी भर सामान उठाया है, अब जिस्म बूढ़ा हो गया तो क्या बाबू,

हड्डियों में अभी भी जोर बाकी है।"—रघुवीर को उसका जवाब पसन्द लगा। उसने सामान उठाकर चलने को कहा।

ब्रिज पार करके वे कालोनी जाने वाली रोड़ पर आ गये। वह बूढ़ा बड़े धैर्य से सामान उठाये चल रहा था।....पर कहीं-कहीं रुक कर वह साँस लेता और जोर से साँस लेने लगता।

"तुम... यहाँ आने को क्यों राजी हो गये? एक और गाड़ी आने को है, इतना तो तुम्हें उस गाड़ी से भी मिल सकता था।"

चलते-चलते बोला वह—"बाबूजी संतोष भी एक चीज का नाम है। मैं कभी लोभ नहीं करता। जो कुछ मिल जाता है, भगवान को धन्यवाद देकर काम चलाता हूँ। परिवार बड़ा है—छः बच्चे हैं, पत्नी बीमार है मेरी, महंगाई का जमाना है....और मैं बूढ़ा हो चला हूँ...। वैसे आप सोच सकते हैं कि एक कुली को क्या मिलता होगा?... फिर भी बाबूजी मुझे संतोष है। भगवान को थोड़े में भी धन्यवाद देता हूँ....तभी तो सब कुछ ठीक हो जाता है।.... ....वरना बहुत लोग ऐसे हैं जिनको एक वक्त रोटी नसीब नहीं होती।...."

"इतने में सब कुछ कर लेते हो?" आश्चर्य से पूछा रघुवीर ने।

"सब भगवान की कृपा है। मैंने कभी किस्मत को और अपने को नहीं कोसा। कभी भूखा भी रहना पड़ा तो मन में सोच लिया कि मालिक को यही मंजूर था। मैंने कभी यह नहीं सोचा कि कल क्या होगा?.... करने वाला ऊपर है, हम तो अपनी ओर से कोशिश कर सकते हैं बस...। और बाबूजी मैं कभी घबराता नहीं, ऊबता नहीं और मुसीबतों से परेशान नहीं होता। तभी तो यह जीवन मजे का है। बच्चे खा-पी लेते हैं, पढ़ते हैं। पहिनते भी हैं और ....आजकल पत्नी जो बीमार है, उसके लिये दवाई भी कर लेता हूँ। संतोष बहुत बड़ी चीज है बाबू....।"

रघुवीर को लगा, यह उसी की जिंदगी की तरह एक जिन्दगी है, पर इसकी जिंदगी कितनी खुशहाल है। उसे अपनी जिंदगी में अभाव ही अभाव दिखाई दिये। उसे ग्लानि होने लगी कि उसने कभी भगवान को अपने जीवन में धन्यवाद नहीं दिया, कभी उसने प्रेम और स्नेह से काम नहीं लिया, और संतोष नाम की चीज से तो वह परिचित ही नहीं है।....

और फिर उसे [illegible]
सबसे बड़ी जो कमी उसे अपने जीवन में दिखाई दी, वह थी—असंतोष !

कॉलोनी आ गई। मकान भी आ गया। पैसे देते समय रघुवीर बोला— "बाबा मैंने तुमसे एक बहुत बड़ा सबक सीखा है आज ! जो मेरा जीवन बदल देगा !"............रघुवीर की आँखों में स्नेह था और भी एक दृढ़ता की भावना की चमक !

०००

10

"अपोलो"

नसरुद्दीन

* * *
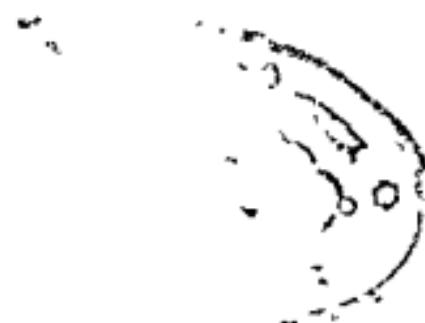
अरी ओ छिनाल रांड ! यों तुम्बे की तरह मुँह फुलाये रखोगी तो कोई ग्राहक पंखी तो लेना दूर रहा, तेरी तरफ देखेगा भी नहीं। घर से रवाना होते ही उपला को माँ की कर्कश ध्वनि सुनाई दी। उपला एक बारगी सहम गई, वह माँ के सुझाव से बड़बड़ाने लगी, "बाबू, हे बाबू, ये सुन्दर पंखियाँ दस पैसे की एक है। रे, बाबू !" फिर सामने कोई ग्राहक नहीं पाकर वह उदास होकर रह गई।

वह पल प्रतिपल बढ़े जा रही थी। अपनी जानी-मानी नित्य की मन्जिल की ओर। पूरे रास्ते में उसे अपने बूढ़े बापू के ये शब्द याद आ रहे थे, "बेटी उपला, आज गोश्त खाने को मन करता है रे, थोड़ी बिक्री ज्यादा करके एक पाव गोश्त, अदरख, आदि लेती आना मेरी बिटोड़ी !"

"हाँ बापू, भगवान ने चाहा तो जरूर लाऊँगी।" उपला ने कहने

चाचा रोज जंगल मे जाता और कच्चे बांस और नारियल के पेड़ की शाखायें काट कर लाता। शकुन्तला उनको रंग कर तरह-तरह की सुन्दर पंखियाँ बनाती। उन पंखियों की बिक्री शकुन्तला खुद करती। उपला की जिन्दगी के खट्टे-मीठे दिन अपनी रफ्तार से गुजरे जा रहे थे। अचानक उस दिन शकुन्तला को जोरदार ज्वर आ गया था। उपला पंखियों की माला बाँह में डाल कर चल दी स्टेशन की ओर। आज गर्मी कुछ अधिक थी। सभी आदमी गर्मी से परेशान हो रहे थे। "ए पंखी ले लो, बाबू पंखी, दस पैसे की एक पंखी," उपला बिना किसी ग्राहक की चिन्ता किए खड़ी गाड़ी के तीन चार चक्कर काट गई। फिर क्रम से हर एक डिब्बे में पंखे बेचने लगी। पन्द्रह मिनट के अन्दर उपला ने पचासो पंखे बेच डाले। दूर प्लेटफॉर्म पर खड़े एक निःसन्तान दम्पत्ति इस नन्ही गुड़िया की चंचलता की ओर उन्मुग्ध थे।

"कौन ?" उपला के घर की दहलीज मे पैर रखने ही शकुन्तला ने कराहते हुए पूछा। "मैं हूँ चाची उपला," शकुन्तला उपला की ओर देखे बिना ही बोल पड़ी, "अरी राड कहीं की, पंखियाँ बेचने नही गई क्या? अगर नहीं जावेगी, तो खावेगी क्या, मेरा सिर !" "नहीं चाची, ये लो पाँच रुपये मैंने पचासो पंखे बेच दिये हैं।" शकुन्तला शायद अपनी गलती पर पछता रही थी। तभी तो वह आँखें बन्द किए हुए कुछ देर बुदबुदाती रही।

उस बात को आज पूरे नौ वर्ष बीत चुके होंगे। उसी दिन से पंखियों के बेचने का कार्य उपला के जिम्मे बन गया था। सारी कोशिशों के बावजूद रोज दस-पन्द्रह पंखियों की औसत बिक्री रह गई थी। उपला परेशान थी अपनी तकदीर से व शकुन्तला परेशान थी उपला से! तभी तो वह आये दिन कहती, "अरी हरामजादी, जब तक तू कमा कर नहीं लाएगी तो इस घर मे तेरा काला मुँह रखूँगी भी तो कैसे ?" उपला भी ऐसे कर्कश तानों की अभ्यस्त हो चुकी थी। कभी-कभी दिन भर आने पर वह एकान्त में बैठ कर आँसू बहा कर अपने मन का बोझ हल्का कर लिया करती थी। इसके सिवाय चारा भी क्या था।

पिछले नौ वर्षों से अनेकों यात्रियों ने उपला को सदा पंखियाँ बेचते ही देखा था।

खूबसूरत गरीब उपला को हर नजर भूखी और ललचाई नजर से घूरती! बस, यही कारण था कि वह कम तादाद में पंखियाँ बेचने लगी

11

मौत के रिश

अफ़ज़ल खाँ 'अफ

• •

कड़ाके की सर्दी फिर रात के ग्यारह बजे का समय। इक्के-दुक्के आद
ही इधर से उधर आते जाते दिखाई दे रहे हैं। साइकिल के पैडिलों पर
जल्दी पहुँचने का भार साधे तेज गति से विचारों में खोया, गली-पगडंडी
सड़कों को पार करता बढ़ा आ रहा हूँ। अचानक एक ज़ोरदार झटका लगा औ
मैं परिस्थिति को समझूँ, तब तक मैं औंधे मुँह नीचे था और साइकिल मेरे ऊपर
जल्दी ही अपने को ठीक-ठाक किया। पास ही एक साहब औंधे मुँह बर
पड़े हुए थे। सारी परिस्थिति समझ में आ गई। दिमाग की नसें तन गईं औ
दो-चार भद्दी गालियाँ उन औंधे मुँह पड़े साहब पर झाड़ दीं। साइकि
उठाई और उस पर बैठूँ; तभी मेरी नज़रें साइकिल के उस पहिए पर अट
गईं जो किसी रेखागणित की कापी में बने त्रिभुज का मॉडल बन गया था।
करीब दो मील घर का रास्ता और कड़ाके की सर्दी ऊपर से साइकिल के बोझे
का विचार एक ऐसी चिनगारी मेरे दिमाग को जला गया कि मैं तिलमिला उठा।

मैं यह सोच ही रहा था कि एक चका-चौंध करने वाली रोशनी मेरी आँखों से आ टकराई। अनजाने ही मेरा हाथ ऊपर उठ गया और रोशनी ठहर गई। एक भारी भरकम आवाज मानो से आ टकराई—क्या बात है। ये सब क्या है। टैक्सी का आभास पा मैंने चैन की साँस ली। दिलीप बाबू के दोनों हाथों को पकड़ते हुए ड्राइवर को सहयोग के लिये इशारा कर दिया। ड्राइवर ने एक शंका की नजर हम दोनों पर फेंकी और वह टैक्सी को स्टार्ट कर चला भी जाता अगर मैं हँसकर शराबी का अभिनय न बताता। ड्राइवर एक भद्दी हँसी हँसता हुआ नीचे आया और दिलीप बाबू की दोनों टाँगों को पकड़ते हुए बोला—लो उठाओ। ना जाने कैसे-कैसे लोगों से पाला पड़ता है। जब दिलीप बाबू को पिछली सीट पर लिटा दिया तो मैंने अपनी टूटी साइकिल को कार के ऊपरी झंगले पर पटक दी। ड्राइवर ने आना-कानी की पर विवशता और नोट के लालच से बड़बड़ाता टैक्सी को स्टार्ट करने लगा।

मैंने सेठजी की हवेली का पता ड्राइवर को कह दिया। एक अचरज भरी नजर ड्राइवर ने मुझ पर डाली और टैक्सी आगे बढ़ गई।

टैक्सी सेठ दीना नाथ के बगले की ओर बढ़ी जा रही थी तभी दिलीप बाबू फिर बड़बड़ाये—मीना अगर तुम्हें कुछ हो गया या तुम मुझे नहीं मिलीं तो इस हरे-भरे खानदान को तबाह कर दूँगा। उन सबका खून कर दूँगा जिन्होंने तुझको मुझसे छीना है। एक अज्ञात भय मेरे मन में छा गया। इस हालत में दिलीप बाबू का घर जाना ठीक नहीं। ना जाने नशे में क्या घटनायें उपस्थित हो जायें और बाप बेटे में जिन्दगी भर के लिये ठन जाये। मैंने टैक्सी को आगे के मोड़ पर ही रुकने का आदेश दे दिया। यहीं पास ही मेरा मकान था।

रात के करीब ३ बजे हैं। मैं अपने फर्श पर करवटें बदल रहा हूँ। फर्श की ठंडक मुझे सोने नहीं दे रही है और मन में एक जंजाल सा आ रहा है उन साहबजादे पर जो मेरे बिस्तर में आराम से पलंग पर सो रहे हैं।

अचानक दिलीप बाबू हड़बड़ा कर उठ बैठे और अंधेरे के धुँधले प्रकाश में इधर-उधर देखने लगे। मैं उठा और लाइट का बटन ऑन कर दिया। दिलीप बाबू एक दम चौंक से गये। मैंने दिलीप बाबू के चेहरे को ध्यान से देखा जिसमें नशे की मात्रा कई प्रतिशत कम हो गई थी। यकायक दिलीप बाबू चिल्ला पड़े—कौन हो तुम? मैं कहाँ हूँ? आखिर ये सब क्या है? मैं

मुस्कराया और जवाब दिया—तुम अपने शहर में, अपने ही मोहल्ले में एक लेखक के कमरे में हो। तुम्हें नशे की हालत में घर ले जाना मैंने उचित नहीं समझा और यहाँ ले आया। आराम करो और सुबह घर चले जाना। अपने दोनों हाथों से सर को दबाये दिलीप बाबू अस्पष्ट शब्दों में कह उठे—अब क्या घर जाऊँगा मेरे अनजान हमदर्द, मेरे भाई। और उनके गालों पर आँसुओं की बूँदें बह चली। एक आस भरी नजर उन्होंने मुझ पर डाली और बोले—तुम इसी मोहल्ले के निवासी हो। यहाँ रहते आये हो। क्या तुम मेरी मीना को नहीं जानते? क्या हमारे मुनीम भोला शंकर जी की बेटी को नहीं जानते? एक धुँधली सी तस्वीर मेरे मस्तिष्क में उतर आई। एक सावली, पतली दुबली, बड़ी-बड़ी आँखों वाली सतरह अठारह वर्षीय तरुणी, जो अपने पिता के साथ सेठजी के यहाँ आती-जाती मेरे कमरे से दिखाई देती थी। जिसे देखकर एक बार मेरे मन में भी प्यार या वासना की हूक उठी थी और पता लगाने पर उसका नाम मालूम हुआ था—मीना ...... मीना ...... और यहाँ आकर मेरी विचारधारा टूट गई और समझ में आ गई मुनीमजी पर सेठजी द्वारा झूठा चोरी का इल्जाम लगाकर नौकरी से हटा देने व इस शहर को छोड़ देने पर मजबूर करने की सारी दास्तान। मैं चिल्ला पड़ा—हाँ-हाँ-मैं जानता हूँ तुम्हारी मीना को। तुम्हारे पिताजी को शायद ये सब मालूम हो गया या इसलिए उन्होंने मुनीम को नौकरी से हटाकर उन्हें उनके गाँव भेज दिया। मैंने देखा दिलीप बाबू की आँखों में एक चमक-सी आ गई। वे एक झटके से खाट से उठ पड़े। तुम्हारे अहसानों का बदला मैं जिन्दगी भर नहीं भूलूँगा मेरे दोस्त। मैं जानता हूँ उसके गाँव का पता। मैं अभी जाकर अपनी बिछुड़ी मीना से मिलता हूँ। यह कहते हुए दिलीप बाबू कमरे से निकल पड़े।

दिलीप बाबू के जाने के बाद ना जाने कौन-सी एक अज्ञात प्रेरणा मुझे मिली कि पूरे रात के थपेड़े तथा सर्दी के बावजूद कपड़े पहन तथा एक शाल शरीर पर डाल मैं भी कमरे से बाहर आ गया। देखा दिलीप बाबू स्टेशन जाने वाली सड़क की ओर बढ़े जा रहे हैं। मैंने भी अपने कदम उस ओर बढ़ा दिये। जब मैं स्टेशन पहुँचा दिलीप बाबू बुकिंग गेट से टिकट खरीद कर प्लेटफार्म की ओर जहाँ मारवाड़ मेल जाने की तैयारी में खड़ी थी, बढ़ गये। मैं प्लेटफार्म के बाहर से ही दिलीप बाबू को तथा उनकी उमंग व प्यार के उत्साह को निहारे जा रहा था।

दिलीप बाबू जाते ही फाटक खोल डिब्बे में घुस पड़े । सामने ही एक
ौरत अपनी गोद में बच्चा लिये बैठी थी । दिलीप बाबू बैठने की सीट होते
ए भी उस औरत के सामने खड़े हुए थे । डिब्बे में जल रहे बल्ब के धुँधले
काश मे मुझे दूर से दिखाई दे रहा था कि दिलीप बाबू बड़े ही पागलपने से बातें
र रहे हैं । औरत बार-बार अपनी साड़ी के पल्लू को अपनी आँखों से छुआ
ही थी । वे क्या बातें कर रहे थे यह मैं नहीं सुन पा रहा था । रेल मुझ से
ाफी दूर पर थी । इतने में दिलीप बाबू को ना जाने क्या सूझा उस औरत के
ाद में खेल रहे बच्चे को, वह बच्चा था या बच्ची यह जानने की ओर मेरा
यान ही नहीं गया, अपनी गोद में उठाया और उस बच्चे के अनगिनत चुम्बन
अपना पर्स उसके हाथों में दे; उसकी माँ को लौटा दिया । इतने में एक
वक हाथ में दो चाय की कुल्हड़ लिये उसी डब्बे में प्रवेश किया । उस
ौरत ने अपना चेहरा घूँघट में ढक लिया । अनायास इन्जन की कर्कश सीटी
मेरा ध्यान कुछ समय के लिये मोड़ दिया । कुछ ही समय के पश्चात रेल के
ब्बे धीमी गति से मेरी नजरों के सामने से खिसकते नजर आये । दिलीप
ाबू एक हारे जुआरी की तरह लड़खड़ाते प्लेटफार्म के बाहर आते दिखाई
दये । मुझे देखते ही सुबक पड़े दिलीप बाबू—मीना बाई ही मेरे लिए मर
ई दोस्त । मीना मर गई, मैं कुछ कहूँ इससे पहले ही दिलीप बाबू पागलों की
ाँति दौड़ते हुए मेरी नजरों से ओझल हो गये ।

मैंने एक तांगा लिया और घर आ गया जागरण के कारण पलंग पर
ड़ते ही आँख लग गई । जब आँख खुली तो सूरज काफी ऊपर चढ़ आया था ।
दन के करीब दाई बजे थे । बाहर की चिल्लाहट को सुन कमरे से बाहर आ
या । पास ही के पड़ोसी बंगाली बाबू चिल्ला-चिल्लाकर कह रहे थे—कल ही
ो बेचारा विलायत से आया था । मैं सन्न सा रह गया । वे कहे जा रहे थे—
र शहर आने से पहले किसी को कुछ कहा भी तो नहीं । कोई चिट्ठी-पत्री
ी तो नहीं छोड़ गया । भरी जवानी में आत्म हत्या कर अपने भगवान स्वरूप
ा को कलंक लगा गया । आस-पास ऐसी आवाज में मां देखोकर रखना ही
ड़ता । मैं भरसक दिमाग की नसों को फटने से बचाने के लिये सर को दोनों
ाथों से दबा लेता हूं और दौड़कर पलंग पर गिर पड़ता हूं ।

ना जाने कब शाम हो जाती है । शाम का अन्धकार देखे बनता जिन्दगी
ही अन्धकार की जन्म है । अन्धकार के मुखड़े पर ही बड़े-बड़े प्रश्न में

रहा था 'बाकी रात सादगी'। अखबार उठा लेता हूँ शायद दिलीप बाबू के बचने की खबर हो और पढ़ने लगता हूँ—सुबह चार बजे जाने वाली मारवाड़ मेल शहर से तीस किलोमीटर जाने के बाद एक पुल से उलट गई। भारी संख्या में लोग मारे गये। लाशों के ढेर के बीच एक लड़का अपनी माँ का दूध पीते पाया गया। लड़के के हाथ में एक पर्स था जिसमें सत्रह सौ बावन रुपये अठारह पैसे थे। लड़के के पिता का पता नहीं चल सका। उसकी मृत माँ का भी सिर्फ नाम मालूम हो सका है, अता-पता नहीं। जिस मृत औरत का बालक दूध पी रहा था उस औरत के हाथ पर गुदा हुआ नाम था—मीना।

"नहीं—इतने त्याग से काम नहीं चलेगा। इससे भी बड़ा त्याग करना होगा। तुम्हें दल बदलना होगा। मेरी अन्तरात्मा की आवाज है कि इस दल के ग्रहों से तुम्हारे सन्तान-प्राप्ति के ग्रह मेल नहीं खाते।"

मन्त्री ने हँसकर कहा, "बस महाराज! इतनी सी बात थी। इसे आप त्याग कहते हैं? यह तो उल्टा लाभ का काम है। वर्तमान मुख्यमन्त्री की कुर्सी के नीचे एक टाँग मेरी लगाई हुई है। इस टाँग के बदले विरोधी दल वाले मुझे मन्त्री बनाने के लिये आसानी से तैयार हो जायेंगे। आज ही शासक दल से त्याग-पत्र देता हूँ।"

महात्मा ने, उसे आश्वासन दिया कि अगर वह ऐसा करेगा तो उसे अवश्य सन्तान प्राप्ति होगी। उपमन्त्री महात्मा से तीसरे दिन मिलने के लिये कहकर चला गया।

जब उपमन्त्री ने मुख्यमन्त्री को अपना दल बदलने का निश्चय बताया तो मुख्यमन्त्री ने समझा कि उपमन्त्री मन्त्री बनना चाहता है। उसने उपमन्त्री को शीघ्र ही मन्त्री बना देने का वचन दिया। उपमन्त्री ने झुँझलाकर कहा, "मुझे मन्त्री पद का कोई लोभ नहीं है। मैं केवल दल बदलना चाहता हूँ। यह लीजिए मेरा त्यागपत्र।" यह कहकर वह चला गया।

मुख्यमन्त्री हैरान रह गया। उसकी समझ में नहीं आया कि विरोधियों ने उसे क्या कहकर बहकाया है?

आखिर उसने राज्य के गुप्तचर विभाग को यह आदेश दिया कि वे बाकी काम छोड़कर इस बात का पता लगायें कि फलां उपमन्त्री दल क्यों बदलना चाहता है? आदेश पाकर गुप्तचर विभाग उपमन्त्री के पीछे छाया की तरह लग गया और उसने तुरन्त वास्तविकता का पता लगा लिया। गुप्तचर विभाग ने यह सन्देह भी प्रकट किया कि महात्मा विरोधियों से मिला हुआ है।

उसी रात मुख्यमन्त्री ने महात्मा से भेंट की।

अगले दिन उपमन्त्री ने आकर महात्मा को सूचना दी कि उसने शासक दल से त्यागपत्र दे दिया है और विरोधी दलों के साथ मामला तय कर लिया है।

महात्मा यह सुनकर कुछ देर समाधिस्थ बैठा रहा और फिर उसने धीरे से कहा, "उपमन्त्री! अपना त्यागपत्र वापिस ले लो। अब तुम्हें दल

ने की आवश्यकता नहीं है। मेरी अन्तरात्मा कहती है, तुम्हें शीघ्र ही दल में रहते हुए ही सन्तान-प्राप्ति होगी। दल बदलकर तुम निस्सन्तान
…।"

"लेकिन महाराज! परसों ही तो आपने मुझे सन्तान-प्राप्ति के लिए
बदलने की सलाह दी थी।" उपमन्त्री ने चकित होकर पूछा।

"यह मेरी अन्तरात्मा की आवाज है।"

महात्मा ने गम्भीर होकर कहा।

"मगर महाराज आपकी अन्तरात्मा की आवाज में यह आकस्मिक
…र्तन क्यों?"

"मेरी अन्तरात्मा ने दल बदल लिया है।" महात्मा ने उसी गम्भीरता
…हा।

●●●

13

दुख में अकेले

दिनेश विजयवर्गीय

* * *

उन्हें निमटते-निमटते भी नौ बज गये। वे झल्लाये—"अरे ओ प्रेमू की माँ क्या अभी तक खाना नहीं बना? आखिर तुम लोगों ने····।" वे आगे कुछ कहते हुए से ठहर गये। सामने प्रेमेन्द्र—उनका बडा लड़का खड़ा था।

"क्या बात है पिताजी?" वह उनसे पूछ रहा है। पर वे अब आग बबूला होकर बोल नहीं पा रहे हैं। जानते हैं यदि कुछ और बोला तो बस अभी चढ़ बैठेगा। इसलिये दबी जुबान से बोल रहे हैं—"भई वो, कोटा जाने वाली बस निकल जाएगी न! साढ़े नौ पर रवाना हो जाएगी। और अभी तक भी खाना नहीं आया।"

प्रेमेन्द्र रसोई में जाकर खुद ही खाना परोसने की व्यवस्था में लग गया। दो रोटी ही ले पाये थे कि बस का टाइम निकट आ गया।

मुरली जी इस जेठ की तपती सुबह में हाथ में बैग लटकाए, धूप से बचते हुए पेड़ों की छायों में आगे बढ़ते जा रहे हैं। पर वह पहले की तरह भाग से नहीं रहे हैं। रईसी चाल से चल रहे हैं। पर दूसरे ही क्षण वे सोचते हैं—रईसी चाल हो कैसे सकती है। अब काहे के रईस हैं? रईसी तो पहले भी कब थी, पर फिर भी आज की स्थिति से ठीक थे।

इन छ महीनों में वह कितने गए हैं। नौकरी से पेन्शन क्या हुई जैसे जी बरबादी हो गई। पहले ६००-७०० कुल पड़ जाते थे पर अब तो २०० भी मुश्किल से समझो। लेकिन इसका मतलब क्या हुआ? उनकी घर में इज्जत न रहे! प्रेमेन्द्र आएगा और बिना कोई आदर का सलूक किये बोलने लगेगा। और उसका सबका अच्छा-खासा सिर दर्द है। जवान हो गई पर अभी तक शादी नहीं हो पाई। हर माह लड़का तलाश करने में आज यहाँ कल वहाँ के चक्कर लग रहे हैं। बस वह प्रेमेन्द्र की शादी कर पाए हैं। शादी को दो साल भी नहीं हुए कि दूसरा बच्चा होने वाला है। नौकरी भी तो तीन साल से करने लगा है—स्कूल की मास्टरी। लेकिन अब बोलेगा तो ऐसे जैसे कहीं का नवाब बोल रहा हो। पहले वहीं उन्हें मोटर तक छोड़ने के लिये साईकिल पर बिठलाकर लाता था। लेकिन आज पूछा तक नहीं। उसकी माँ भी कौनसी ध्यान देने लगी है। पहले वह सोचा करते थे—घर पर दिन भर मस्त रहेंगे। जी चाहेगा जिधर घूमेंगे। लेकिन वह ऐसा कर नहीं पा रहे हैं।

वह बस में बैठ गए। बस उनके बैठते ही रवाना हो गई। लगा जैसे उनकी प्रतीक्षा में हो। पर उन्हें जल्दी न पहुँच पाने से खिड़की के पास की सीट नहीं मिल पाई। वहाँ एक गाँव वाली महिला, बच्चे को लिये हुए बैठी थी। पर वह यह सोचकर कि अभी कहीं भी रास्ते में उतर जाएगी बैठ गए। वह फिर कुछ सोचने लग गए।

कितना अच्छा होता वह लेखक होते। यदि लेखक होते तो अब वह लेख कई ताजा घटनाओं पर लिख सकते थे। पुरानी व नई-पीढ़ी के संघर्ष पर अपने विचारों को किसी भी पेपर में प्रकाशित करवा देते। और इतने समय तक तो उनकी स्थिति लोकप्रिय लेखक जैसी होती। सम्पादक नाम देखता और सधन्यवाद स्वीकृत कर लेता। इस तरह आज वो जहाँ इस धंधे को तेजी से अपनाकर अपने समय का सदुपयोग करते वहाँ जेब खर्च के पैसे से खुले हाथ रहते। और कुछ साग-सब्जी के पैसे भी निकलते।

कण्डक्टर —"कहाँ जाना है आपको ?" कहने पर वह एकाएक लिटपिटा गए। पर अपने आप को व्यस्त भाव से प्रस्तुत करते हुए लहजे में बोले "कोटा"।

"निकालिये दो रुपये"। कण्डक्टर ने टिकिट उनकी ओर बढ़ाते हुए कहा।

उन्होंने टिकिट लेकर दो रुपये तो दे दिये पर उनको इन दो रुपया पर दुःख हुआ। पहले जब वह प्राय: जाया करते थे तो एक रुपया पैंतीस पैसे लगते थे; फिर, एक सत्तर और अब पूरे दो रुपये।

कुछ ही दूर बाद वह गाँव वाली उतर गई। तो खिड़की के पास उनको बैठने को मिल गया। अब उन्हें ठण्डी हवा में राहत मिलने लगी थी।

इजी होकर वह अपने विचारों को बुनने लगे। बस उतरते ही वह किससे मिलना चाहेंगे।—ई सी. बाबू से। हाँ इनसे ही मिलना ठीक रहेगा। और यदि गोल कमरे में गए तो एकाउन्ट्स वाले विनोद बाबू से मिलेंगे। लेकिन वहाँ जाने पर वह केवल इन दो व्यक्तियों से ही तो मिलकर नहीं रह जाएंगे! आखिर वह कई वर्षों तक इस ऑफिस में भी एस रहे हैं। सारा स्टाफ उनके इशारे पर काम करता था। उन्होंने अपने समय पर कई 'फोर्थ क्लास' सर्वेन्ट्स की पदोन्नति बाबू बनवाकर की है। कई को गाँव की दूरियों से घसीटते हुए वह अपने कार्यालय में लेकर आए थे। उन्हें एकदम गर्मी अपने से लगने लगे और लगा, कि उनका काम जल्दी ही हो जाएगा – सिर्फ दो घण्टे में।

बस, स्टेण्ड पर आकर ठहर गई।

"रिक्शे में चलेंगे बाबूजी ?" रिक्शे वाला पूछ रहा है। पर वह सिर्फ 'नहीं' कहकर आगे बढ़ जाते हैं। पैदल ही चलना ठीक रहेगा। वह जानते हैं कि रिक्शे वाला कम से कम एक रुपया लेगा ही नहीं। पर अब तो वह एक रुपया भी नहीं दे पायेंगे। एक रुपया बचेगा तो घर पर एक टाइम की सब्जी निकलेगी। और वह रुपये की इतनी अच्छी उपयोगिता खोज निकालने से प्रसन्न हुए।

धूप की तेजी बढ़ती हुए देख, वह पेड़ों के नीचे से छाया में निकलते हुए आ रहे हैं। कई बार वह इस रास्ते से गुजरे हैं—तेज-तेज कदमों से।

पर अब वह स्वतन्त्र हैं। धीरे-धीरे चल रहे हैं। और इस दार्शनिक ध्यान में चलकर वह कुछ अपने में ही घुलने का प्रयास कर रहे हैं।

जैसे ही घर पहुँच कर बताऊँगा कि पेन्शन का सारा काम एक ही दिन में पूरा हो गया है और अगले माह से ही उन्हें दो सौ रुपये मिलने वाले हैं तो सबको बेहद खुशी होगी। और बीमे की मिलने वाली रकम भी एक दो माह में ही मिल जावेगी। इस बीमे की रकम को पाकर सबसे अधिक खुशी प्रेमू की माँ को होगी। क्योंकि अब वह उनकी लाडली बेटी की शादी टीकठाक कर देंगे। इस तरह जहाँ इन उपलब्धियों से उन्हें खुशी होगी वहाँ उन्हें घर पर यह बताने का अवसर भी मिल जावेगा कि कितना रेस्पेक्ट है अभी उनका ऑफिस में। रोब जो था पहले। देख लियाना प्रेमू की माँ एक ही दिन में हुआ है सारा काम। इसे वह घर पर मूछों पर हाथ फिराते हुए कहेंगे।

उनकी निगाह अपनी भावी कल्पनाओं से हट कर सामने ऑफिस के गेट पर चली गई। लगा जैसे कोई सपना बीच में ही टूट गया हो। वही का वही सब कुछ। बदला कुछ नहीं है। बाहरी गेट पर, नीम के पेड़ की छाया में खड़ा हुआ जग्गू भाई का चाय-पान का ठेला। अन्दर चाहर-दीवारी से लगा केन्टीन। केन्टीन से आने वाली चाय प्यालों की खनखनाहट उन्होंने सुनी तो उन्हें अपने लंच के दिन याद आने लगे।

उनका ऑफिस में रोब-दोब अच्छा था। कोई भी बाबू लंच टाइम से पहले लंच के लिये नहीं खिसक जाया करता था। और नहीं आधे घंटे की जगह एक दो घंटे लगाकर आने का आदि था। अब पता नहीं कैसे कुछ होगा।

जग्गू ने उन्हें देख लिया तो सलाम किया। और मुस्कराता हुआ कहने लगा—"बाबू जी आओ! एक प्याला चाय पीकर जाओ।" वह जग्गू से मना कर रहे हैं—"नहीं भाई, बहुत पी पहले ही। अब क्या....।" उन्हें मना करते समय अपनी जेब में पड़े रुपयों का ध्यान हो गया। और वह आगे बढ़ गए।

ऑफिस के बड़े गोल कमरे के गेट पर पहुँचे तो साढ़े ग्यारह हो रहे थे। भीतर की सब ट्यूब लाईटें जली हुई थीं। वह बेहद प्रसन्न हुए—कि सब बाबू लोग आए हुए हैं।

एक दो मिनट उन्होंने गेट से ही सबका जायज़ा लिया। जैसे अब भी वह अपना समय ही समझ, कुछ कहेंगे।

कांती बाबू टाइप कर रहे हैं। गुलजार बाबू गरदन झुकाए कागज़ों और फाइलों के ढेर में फसे हुए हैं। ई. सी. बाबू शायद कहीं गए हुए हैं। उनकी अलमारी खुली पड़ी है। दूसरी ओर देखा एकाउन्ट्स बाबू विनोद खन्ना इजी होकर सिगरेट पी रहे हैं। जब वह थे किसी बाबू की हिम्मत नहीं होती थी कि ऑफिस में बीड़ी-सिगरेट पीलें।

इन सबके बाद उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि ओ एस की सीट जहाँ से वह सब बाबुओं पर प्रशासकीय दृष्टि रखते थे, अब वहाँ नहीं रही है। शायद दूसरे कमरे में शिफ्ट कर दी गई है।

उन्होंने अन्दर कदम रखने से पहले सोचा कि वह विनोद बाबू से ही पहले मिलेंगे। वह ही उनका काम पूरा कर पावेंगे। सबसे पहले वह विनोद बाबू का ध्यान खेंचने के लिये उनसे नमस्ते जैसा कुछ कहेंगे। विनोद बाबू जैसे ही उन्हें अपने पास देखेंगे तो हड़बड़ाते हुए उठ खड़े होंगे। और नीचा सिर किये सिगरेट बुझाने के बाद में अपनी सिगरेट पीने की झेंप मिटाएंगे। वहीं पर जैसे ही सब बाबू उन्हें देखेंगे तो उन्हें आ घेरेंगे सब हँसते खिलखिलाते उनकी कुशल क्षेम पूछेंगे।

—"कहिये क्या हाल है ?" कहते हुए वह सीधे विनोद बाबू की सीट पर पहुँच गए। वह अभी सिगरेट का पूरा कश भी नहीं खींच पाए कि कोई अपने पास चली आई पूर्व परिचित आवाज से वह चौंक गए। विनोद बाबू ने उन्हें देख नमस्ते की। पर जैसे ही उन्हें आशा थी कि उन्हें देखते ही विनोद बाबू सिगरेट बुझा देंगे या उनके रेस्पेक्ट में खड़े हो जाएंगे, ऐसा कुछ नहीं हुआ।

सामने की कुर्सी पर उनसे बैठने के लिये कह, विनोद बाबू जल्दी-जल्दी सिगरेट पूरी करने लगे। वह चुप्पी साधे हुए थे। उन्होंने दूसरे बाबुओं की ओर देखा। जो उन्हें देखदेखकर अपनी सीट से उठ तो गए थे, लेकिन उनके पास न आकर सब दूसरे कमरे में जा रहे थे। जहाँ से खाली कप प्लेटों की खनखनाहट सुनाई दे रही थी। कुछ ही क्षणों में मिस लता सिन्हा भी चली गईं। लता सिन्हा को जाते देख विनोद बाबू ने कहा—"आप यहीं बैठिये। हम लोग १०-१५ मिनिट में आते हैं।" और इस हिदायत के साथ ही विनोद बाबू भी मिस के पीछे हो लिये।

वे अकेले रह गए। इस बड़े कमरे में उन्हें लगा कि सबने उन्हें 'नो लिफ्ट' देकर दूर काटकर रख दिया है। वे वे अब उनका कैसा रेगलेट था यहाँ! और आज नौकरी से निवृत होने के बाद पहली बार आने पर भी कोई लगाव नहीं है। क्या वे इस तरह इन लोगों के अलगाव में अपना कार्य पूरा कर लेंगे? और यदि आज वे अपना कार्य पूरा नहीं करा पाए तो उन्हें घर पर भी कितना सुनना पड़ेगा। प्रेम की माँ से—'लो साहब, खाली हाथ लौट आए। नहीं हुआ ना काम। कहती थी न सीट पर बने हो तब तक करवालो काम। तब बात और रहती है, और अब कौन किसे पूछता है।'

तभी एक कप चाय लिये ऑफिस का चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी—तुलसी राम आया। तुलसी राम ने उन्हें देख, दूर से ही नमस्ते की। और उनसे —"अच्छा तो हो बाबूजी?" कहकर लौटने लगा, तो उन्होंने ही पूछा— "क्यों भाई, आज क्या कोई विशेष बात है क्या?" वे चाय पार्टी के लिये पूछ रहे थे।

वह मुस्कुराया। फिर अपने को व्यस्त बनाते हुए बोला—"वो नई मिस सिन्हा है न, उनकी सगाई हुई है।" उसका संक्षिप्त उत्तर था।

"उन्होंने चाय सिप करते हुए सोचा—" क्या यही समय रह गया है चाय पार्टी के लिये। अभी तो ऑफिस शुरु ही हुआ है। लंच के समय भी तो किया जा सकता था यह सब। वे थे जब ऐसा नहीं हुआ करता था। बाबू को अपनी सीट पर ऑफिस समय तक रहना ही होता था। लंच टाइम ही यह इंजी हो सकता था। उस समय किसी को यह शिकायत नहीं थी कि उनके ऑफिस में फलां टाइम से कोई कागज दबा हुआ है। उन्हें ध्यान आया, पिछले दिनों उन्होने किसी अखबार में कहीं पड़ा था कि एक कर्मचारी को रिटायर्ड हुए एक वर्ष हो गया, और अब तक एक सौ शिकायती पत्र भी दे चुका है पर अभी तक पेन्शन केस बना नहीं है।

वे सब लोग आ गए। विनोद बाबू ने आकर उन्हें बताया कि उनका पेन्शन केस अभी पूरा नहीं बन पाया है। पुराना रेकार्ड ठीक से देखकर बना पायेंगे। करीब एक महीना और लगेगा।

"एक महीना.......।" वे चौंके।

उनकी इच्छा हुई कि वे पूछें—क्यों नहीं छः महीनों तक यह सब कुछ किया जो अब काम करना चाह रहे हो। क्या मुझे पैसों की आवश्यकता नहीं होगी? या उधारी पर ही पेट भर लूँगा।

पर वे चुप रहे और गहरे तक कहीं विचारों में खो गए। उन्हें अपनी जवान बेटी का बोझ महसूस होने लगा और पैसों की कमी से खिचती और कुलमुलाती हुई गृहस्थी याद आने लगी।

वे चलने को हुए। एक बार सब बाबुओं से खड़े रह नमस्ते की। और फिर बाहर निकल आए। कुर्ते की जेब देखी। तीन रुपये अभी भी रखे हुए थे। एक रुपया रिक्शे का और दो रुपये बस किराया। पर उन्होंने अबकी बार भी पैदल ही चलने का निर्णय लिया। और तेज-तेज़ चलने लगे। जग्गू भाई के स्टोव की आवाज उन्हें दूर तक सुनाई दे रही थी।

14

सुहागरात

रघुनाथसिंह शेखावत

* * *

शहनाई बज रही थी, घोड़ों और हथियारों के झुण्ड साज सज्जा के साथ चले आ रहे थे, घुड़सवार ज्योंही लगाम को खींचते त्योंही घोड़े एक साथ हिनहिना उठते थे। महावत के अंकुश से हाथी चिंघाड़ मारते थे, बन्दूकें हवाई फायर कर रही थीं। चुस्त पायजामा, अचकन, केसरिया साफा आदि वस्त्र पहने सभी सरदार सजे हुए थे। उन सबके बीच भैरूंसिंह हाथी के हौदे पर शोभायमान था। जरी का चमकता हुआ साफा सूर्य की किरणों को प्रतिबिम्बित कर रहा था, कमर में नागिन-सी तलवार लटक रही थी, पैरों में सोने का कड़ा और कंगण डोरा बंधा हुआ था और भैरूंसिंह फूले नहीं समा रहा था। पीछे-पीछे सुन्दर सजा हुआ रथ आ रहा था जिसमें उसकी नवोढ़ा पत्नी सपने संजोये बैठी थी और रथ के झीने पर्दे से हाथी पर चढ़े हुए अपने कन्त को निहार रही थी। सोच रही थी कि कितना सुन्दर है,

उसका कन्त ? गठा हुआ शरीर, गोरा चेहरा, मोटी आँखें, कितना खूबसूरत, कितना स्वस्थ ? मेरा भाग धन्य है कि मुझे ऐसा कंत मिला। उधर हाथी पर सवार भैरूंसिह के मन मे विचारों के तांते वध रहे थे। ग्राज का सूर्य वडा सुहावना है, सुना है कि वह रूपवती है, सुन्दर है और गुणो की खान है। जब मैं प्रेमपाश मे वधूंगा तो मुझे कितना आनन्द आयेगा, वे सुनहली घड़ियाँ मेरे लिए स्वर्ग से भी वढकर होगी। सोचते-सोचते भैरूंसिह का गाँव वजावा आगया। महलो, अटारियो और हवेलियो की छतो पर स्त्रियों ने मधुर गान शुरू कर दिये।

बन्दूकें फिर दनदना उठी, हवाई फायर कर-कर वे जता देना चाहती थीं कि भैरूंसिह शादी कर वापिस पहुँच गए हैं। आँगन के प्रथम द्वार पर पुरोहित मन्त्रोच्चारण कर रहा था, गठजोड़े के साथ तिलक का शुभ शकुन कर भैरूंसिह रावले (अन्त.पुर) पधार गये और द्वार पर बारहठ विरदावली गा रहा था।

× × × × ·

"महाराज की जय हो! शेखावत सघ का एक दूत आया है और वह आपसे मिलना चाहता है" अन्त.पुर की सेविका ने आकर अर्ज की। "उसे सम्मान सहित बैठाओ, मैं अभी आता हूँ" "हुकम साहब" कहती हुई सेविका अन्त.पुर से वाहर हो गई और सेवक को खबर दी। सेवक ने दूत को सम्मानसहित दीवानखाने मे बैठाया। थोड़ी देर बाद भैरूंसिह दीवानखाना मे आ गये। दूत खड़ा हुआ, अभिवादन किया और पत्र भैरूंसिह के हाथों मे थमा दिया। भैरूंसिह ने पत्र खोला और पढ़ने लगा—

"विधर्मी बादशाह शाहग्रालम की फौज हमारे आदर्श, हमारे खानदान और हमारे राज्य को कुचलने के लिए विद्रोही मित्रसेन अहीर, पीरखाँ और कायमखानियो से मिलकर हमारी मातृभूमि पर चढ आई है। वह हमारे धर्म और आदर्शों को मटियामेट कर इस्लाम का भण्डा फहराना चाहती है। मातृभूमि के सभी सपूत आज आन और बान पर मर मिटने के लिए तैयार खड़े हैं, सबकी भुजाएँ अरियों को मजा चखाने फड़क उठी हैं, सबका रक्त उबल रहा है और सबकी तलवारें अरियों के खून मे प्यास मिटाने के लिए उतावली हो रही हैं और सभी बहादुर बादशाही फौज का मार्ग अवरुद्ध करने के लिए मांडण की ओर वढ चले हैं। हम उस आततायी को आक्रमण का

गजा बसाना चाहते हैं। अगर आप इस पुण्य कार्य में हाथ बँटाना चाहते हैं तो तुरन्त रण-भूमि की ओर पधारिये और अगर मेवाड़ा कुल पर बट्टा लगाना चाहते हैं तो आपकी मर्जी। हम तो अपनी आन पर मर मिटने के के लिए प्रयाण कर चुके हैं।"

पत्र पढ़ते ही इस वीर का रक्त उबल उठा, पुरखों द्वारा कही हुई बहादुरों की कहानियाँ कुछ ही क्षणों में सिनेमा के चित्रों की भाँति निकल गईं। ममता और कर्त्तव्य दोनों सामने खड़े दिखाई दिये। ममता ने कहा "मेरे रंगीले सरदार! युद्धों में जो मरता है वह मूर्ख होता है। देखते नहीं चन्द्रमा-सी मुख वाली, मृगनयनी, तुम्हारी नवोढ़ा पत्नी रंगीले महलों में तुम्हारा इन्तजार कर रही है, जानते नहीं, आज तुम्हारी सुहागरात है, अभी तो तुमने पहली बार भी उसका मुख नहीं देखा है। अभी तो तुम्हारे कंगण-डोरे भी नहीं खुले हैं, प्रथम मिलन की प्रथम रात्रि तुम्हारा इन्तजार कर रही है। ऐसी रंगीली घड़ियों को छोड़कर युद्ध में मरना कहाँ तक उचित है? चलो महलों की ओर··।"

कर्त्तव्य बोल उठा—"वीर! तुम सोच क्या रहे हो? ममता तुम्हारी सबसे बड़ी दुश्मन है। इसको ठोकर मार कर कर्मपथ पर बढ़ना ही मनुष्य का धर्म है। क्या तुमने अपने पुरखों की बहादुरी की कहानियाँ नहीं सुनी हैं, क्या तुम्हारी नसों में उनका शुद्ध रक्त नहीं बह रहा है, क्या तुम नहीं जानते कि उन्होंने हँसते-हँसते मातृभूमि के लिए अपने प्राण निछावर कर दिए थे, क्या तुम्हें याद नहीं है कि सिर कटने पर भी उनके धड़ ने अरियों को गाजर-मूली की तरह काट गिराया था, क्या तुम उनकी सन्तान नहीं हो? ममता को ठुकराओ, रण-भूमि की ओर बढ़ो और दुश्मन को नाकों चने चबाओ।"

कर्त्तव्य की पुकार सुनते ही भैरुसिंह ने झट पत्र का उत्तर लिख डाला—"आपने सही समय पर मुझे याद किया है, मेरा मार्ग बताया है। मेरे सभी भाइयो! मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं मांडण के रणक्षेत्र में आपको तैयार मिलूँगा। मातृभूमि की रक्षा खातर उसके मान पर मैं मिटूँगा, पर हटूँगा नहीं, आप निश्चिन्त रहिए।" पत्र बंद किया और दूत के हाथों में दे दिया। दूत झट घोड़े पर चढ़ा और मांडण की ओर चल पड़ा।

भैरुसिंह ने अपनी सेना को तैयार होने का आदेश दे दिया और स्वयं शस्त्रालय की ओर बढ़ा, कवच पहने, कमर में तलवारें बाँधी और रणभेष में

सज गया। इसी बीच भैरूसिंह को ममता ने थोड़ा झकझोरा, वीरोचित चेहरा कुछ उदास हुआ। मन ही मन सोचने लगा—तुम्हारी शादी अभी हुई है, पत्नी ने जी भर कर तुम्हें देखा भी नहीं और तुमने उसके दर्शन तक नहीं किए। आने वाली रात्रि में मेरा प्रथम मिलन होता, कितने सपने सजोये थे मैंने। क्या वे सब व्यर्थ जायेंगे? युद्ध से सुरक्षित लौटना सम्भव नहीं दिखता, पत्नी पर क्या बीतेगी? विचारों का तांता टूटा! हैं! मेरे में यह कायरता कहां से आ गई? नहीं ममता तू मेरे कर्त्तव्य को विचलित नहीं कर सकती। रण में जाते समय पत्नी के दर्शन तो करलूं, वह मुझे रोकेगी तो नहीं? नहीं, वह रोकेगी नहीं। वह रूपवती ही नहीं वीरांगना भी है। ऐसा सोचता-सोचता भैरूसिंह महलों की ओर बढ़ गया।

महलों में पैर पड़ते ही रानी झट पलंग से खड़ी हो गई और पति के चरण चूमे तथा शरमाती-सी एक ओर खड़ी हो गई। भैरूसिंह ने कहा—"रानी! बादशाह शाहआलम की सेना हमारे आदर्श, हमारी धरा तथा हमारी आन को लूटने के लिए चढ़ आई है। यह खबर अभी शेखावत सभ का दूत लेकर आया है और साथ ही मुझे युद्ध का निमन्त्रण दिया है, मुझे अभी रणभूमि की ओर बढ़ना है तथा रण में दुश्मन को मजा चखाना है। बोलो! तुम्हारी क्या आज्ञा है?"

यह सुनते ही रानी के हृदय में एक तरह की सनसनाहट पैदा हुई, उसकी शर्म मानो हवा हो गई। पति के चरणों में पड़ी और बोली—"प्राणनाथ! मुझे इस समय ममता और कर्त्तव्य दोनों झकझोर रहे हैं परन्तु मेरी माता ने मुझे यह पाठ पढ़ाया है कि बेटी क्षात्र धर्म पर चलना तलवारों की धार पर चलना है। अपने कुल की मान मर्यादा की इज्जत हर कीमत पर रखना। ममता और कर्त्तव्य के द्वन्द्व युद्ध में हमेशा कर्त्तव्य का आलिंगन करना। इसलिए मैं कर्त्तव्यच्युत नहीं होऊंगी, आपके मार्ग में बाधक नहीं बनूंगी। आप युद्ध-भूमि में जाइये और बैरी को ऐसा पाठ पढ़ाइये कि वह फिर कभी इस भूमि की ओर आंख भी न उठाए। मैं भगवान से विनय करूंगी कि आप दुश्मन पर विजय प्राप्त कर लौटें और उस समय आपका आलिंगन करूंगी।"

"पर युद्ध बड़ा भयंकर होगा लौटने की आशा व्यर्थ है।"

"तो चिन्ता की कोई बात नहीं है आप बहादुरी के साथ रण में

लड़िये। अगर आप लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुए तो भी यह जीवन-संगिनी आपका साथ नहीं छोड़ेगी, स्वर्ग में अपना पुनर्मिलन होगा। आप युद्ध में जाओ और दुश्मन से लड़ो, इस दासी की ओर से किसी बात की चिन्ता मत करना।" रानी ने दृढ़ विश्वास के साथ कहा।

"तुम्हें धन्य है, सौ बार धन्य! मुझे गर्व है कि पत्नी के रूप में मुझे एक वीरांगना मिली है। तुमने मुझमें दुगुना उत्साह भर दिया है। अब हजारों अरियों की तलवारें भी मेरा सिर नहीं काट सकती। बहादुर क्षत्राणी मुझे विदा दो।" कहते हुए भैरूसिंह ने प्रिया का आलिंगन किया, प्यार के दो शब्द कहे और महलों से बाहर आ गया जहाँ रण के लिए सजी हुई सेना उसका इन्तजार कर रही थी।

सजे हुए घोड़े पर यह वीर सवार हुआ और अपनी सेना को सम्बोधित करते हुए बोला, "बहादुरो! हमें अब शीघ्र ही माडण के रण-क्षेत्र में पहुँचना है, जहाँ अपने अन्य बहादुर जवान मातृभूमि की रक्षा हेतु मर मिटने के लिए तैयार खड़े हैं। तुम्हें युद्ध में दिखा देना है कि प्रत्येक राजपूत अपनी आन व बान के लिए सिर कटा सकता है मगर झुका नहीं सकता। जिसको मातृभूमि से प्यार नहीं, जो युद्ध में मरने से डरता है और कायर की भाँति जीना पसन्द करता है और जो परतन्त्रता को ग्रहण कर महलों में सुख की नींद सोना चाहता है, वह अभी अपने घर को लौट सकता है।" सभी ओर से आवाज आई "मरेंगे पर हटेंगे नहीं।"

"तो आओ मेरे साथ आगे बढ़ो देर, करने का समय नहीं है।" 'हरहर महादेव' के शब्दोच्चारण के साथ ही भैरूसिंह का घोड़ा माडण की ओर बढ़ चला और पीछे समस्त सेना जय-जयकार करती हुई बढ़ चली।

माडण की इस रण-भूमि में शेखावाटी के प्रत्येक भाग की सेना आकर दुश्मन से भिड़ गई थी। भैरूसिंह अपनी सेना के साथ ठीक समय पर पहुँच गया। घमासान युद्ध शुरू हुआ, बहादुरों की तलवारें झनझना उठीं, बरछी भाले अरियों का रक्त चाटने नाच उठे। महादेव की जय के साथ ही भैरूसिंह अपनी टुकड़ी सहित अरि दल पर टूट पड़ा। जिधर भी उसकी टुकड़ी की तलवारें चमक उठतीं, मैदान साफ नजर आता। भैरूसिंह ने तो इस समय भैरव-सा रूप धारण कर लिया था। दुश्मनों को गाजर-मूली की तरह काटते हुए वह आगे बढ़ता ही गया। उसकी तलवार रण में बिजली की तरह चमक रही थी।

झिलमिलाता [illegible]

आखिर मे वह बहादुर अरियो के बड़े भारी झुण्ड में घिर गया और बहादुरी के साथ लड़ता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ। यह वीर मातृभूमि के लिए कुरबान हो गया पर अन्तिम दम तक उसने दुश्मन को आगे बढ़ने नहीं दिया और युद्ध मे शेखावतो की विजय मे इस बहादुर का महान योग रहा।

पत्नी को जब अपने बहादुर पति के वीरगति होने का समाचार मिला तो उसके मुख से निकल पड़ा, "मेरे पति ने मेरे धर्म, मेरी भूमि और मेरे चूड़े की लाज रखली है।" वह तुरन्त युद्ध-भूमि मे गई और पति के शव को लेकर धक्‌धक्‌ करती हुई अग्नि मे बैठ गई और सती हो गई। सती के चारो ओर खड़ी हुई अपार भीड़ से यही आवाज आ रही थी—'बहादुरों की सुहागरात रणभूमि में ही मनती है'।

15

सुनहरा-…

नाथूलाल …

* *

धरती के दीपक एवं नभ के तारों के मध्य आज होड़ लगी हुई है … तारों की टिमटिमाहट से गगन जगमगा रहा है तो दीप-पंक्तियों से पृ… ज्योतिर्मय हो रही है। देश का हर घर, हर आंगन दीप-ज्योति से ज्योति… है। कृष्ण पक्ष भी आज शुक्ल-पक्ष-सा विदित हो रहा है। चहुँ ओर मान… ज्योत्स्ना छिटक रही हो। घर-घर में भांति-भांति से खुशियाँ एवं रंग-रेलि… मनाई जा रही हैं। आज दीपावली की छटा अत्यन्त ही अद्भुत दिखाई … रही है। हर स्थान पर चहल-पहल छाई हुई है।

परन्तु दीपक के अंतर-मन में आज धुंधला प्रकाश है। अपनी … को हथेली पर धरे दीपक अपने कक्ष में शान्त बैठा हुआ है। कक्ष … झिलमिलाता तेल-दीप दीपक के उदासीन चेहरे की शान्ति को और … अंधेरा बना रहा है। दीपक के मन में नाना भांति के विचार उठ रहे हैं। …

कहीं अन्यत्र कूच कर जाने की तो कभी सन्ध्या को सदा सर्वदा के लिये त्याग देने की।

दीपक की देह पल-पल पर तप्त तवे की भांति अधिकाधिक उष्ण होती जा रही है। सोचते-सोचते दीपक ने विचार किया—'सन्ध्या घर में नहीं है। क्यों नहीं, मेरे अनिष्ट एवं अभाग्य की निशानी उस रूमाल को मैं अपने अधिकार में लेलूं !' वह उठा, सन्ध्या के कक्ष में जाकर उसके सन्दूक से वह सुनहरा रूमाल लेकर अपने कोट की जेब में रख लिया और अपने कक्ष में लौट आया। सोचने लगा—'प्रभो ! मेरे दुर्भाग्य का दृश्य दिखाने का दिन भी तूने आज का ही चुनकर नियत कर रखा था।'

सन्ध्या घर में लौट आई। सायकालीन भोजन पर दीपक को बुलाने उसके कक्ष में प्रवेश किया। सन्ध्या को देखते ही दीपक की त्यौरियाँ चढ़ गईं। ज्योंही सन्ध्या ने दीपक को कुछ कहना चाहा कि दीपक के चेहरे के उतार-चढ़ाव को देख कुछ सहम गई एवं सोचने लगी—'आज सायकाल से ही इन्हें क्या हो गया है ? कुछ समझ में नहीं आ रहा है। पर सन्ध्या का साहस नहीं हुआ कि दीपक से खुल कर बात करे। वह उसके स्वभाव को गत ५ वर्षों से जानती थी। दीपक के रुख के अनुकूल ही बातचीत किया करती थी। पर आज दीपावली के शुभ पर्व पर अपने प्रियतम का यों अनमना रहना सन्ध्या कैसे सहन कर सकती थी। साहस कर दीपक से पूछ ही लिया—

'आपके कक्ष में तो मैंने बड़ा दीपक रखा था। यह धुंधला दीपक क्यों जलाया।'

दीपक तो अपने मन का भाव सन्ध्या पर किसी न किसी भाँति प्रकट करना ही चाहता था। चिढ़कर बोला—

'इस प्रश्न का उत्तर वह देगा जो तुम्हारा अपना है।'

'आपका मतलब !'

'मतलब वही जो तुम समझ रही हो।'

'मैं कुछ भी तो नहीं समझी।'

'समझते हुए भी न समझने का नाटक करना ही तो स्त्री-जाति की मुख्य कला है।'

'आप कहना क्या चाहते हैं ?'

'चाहते हुए भी कुछ नहीं कहना चाहता। तुम्हारे लिए समझ लेना ही पर्याप्त है।'

'मुझे कुछ भी समझ में नहीं आ रहा है।'

'वाह! तुम्हें क्यों समझ में आएगा।'

दीपक को अब अधिक क्रोध छा गया। क्रोधातुर होकर कहने लगा—'इतनी नादान न बनो, सन्ध्या! वह समय दूर नहीं जब तुम्हें कुछ भी समझने की जरूरत नहीं होगी।' सन्ध्या कहने लगी—'यह आपकी पहेलियों की भाषा कुछ भी समझ में नहीं आ रही है। आप साफ-साफ क्यों नहीं कहते। आज आपको क्या हो गया है?'

'मुझे जो कुछ हो गया है उसे नहीं जानने में ही तुम्हारा हित है।'

'तो क्या मुझसे कोई अपराध हो गया है?'

'अपराध! तुम उसे अपराध कहती हो! विश्वासघात का दूसरा नाम अपराध नहीं होता, सन्ध्या!'

'विश्वासघात, और मुझसे? कैसा विश्वासघात? और किसके प्रति?

'उस मृत्यु सम वज्र घात को जिह्वा पर लाने के लिए मुझे विवश न करो, सन्ध्या! अभी तुम जाओ यहाँ से। मेरा दम घुट रहा है। तुम हट जाओ यहाँ से।'

'हे प्रभो! इन्हें क्या हो गया? इन्होंने कोई नशा तो नहीं किया?' सन्ध्या ने दुःखी होकर कहा।

'नशा और मैंने? मैंने तो नहीं, परन्तु तुम्हें अवश्य नशा चढ़ा हुआ है।'

'यह क्या कह रहे है, आप? भगवान् की कृपा से अब इस शुभ पर्व की पावन रात्रि को तो अमङ्गल मत बनाइये।'

'मगल, अमङ्गल कुछ नहीं। मेरी अन्तिम बात सुन लो। जितनी देर तुम यहाँ खड़ी रहोगी मेरा दम उतना ही अधिक घुटता जाएगा। अब तुम यहाँ से चली जाओ। कल प्रातः की प्रथम किरण के साथ ही मैं अपने जीवन में असामयिक साँझ लाने वाले इस संहारक रहस्य का उद्‌घाटन कर दूँगा।'

अपना मुँह आँचल में छिपाये सन्ध्या अश्रुधारा बहाती हुई दीपक के कक्ष से बाहर चली आई। सीधी अपने शयन-कक्ष में गई। शान्त हो बिना कुछ

खाये-पिये बिस्तर पर सो गई। उसके मन में भाँति-भाँति के विचार चक्कर काटने लगे। सोई-सोई साय से अब तक के अपने प्रत्येक प्रकार के कार्य एवं व्यवहार को एक-एक कर स्मरण करने लगी। परन्तु दीपक की उदासी एव खिन्नता का कोई भी कारण उसे स्मरण नहीं हो पाया। सन्ध्या ने कई प्रकार से मन को समझाकर नींद निकालना चाहा, परन्तु दीपावली पर्व की यह दीप-रात्रि आज सन्ध्या के जीवन की एक लम्बी अन्धकार-पूर्ण रात्रि बन गई।

उधर दीपक को भी कहाँ चैन और शान्ति थी। मस्तिष्क में विचारों का एक ताँता लगा हुआ। सोया-सोया अपने भाग्य को कोस रहा था। अपने जीवन को धिक्कार रहा था। आज उसे गृहस्थी-जीवन से ग्लानि हो रही थी। चारों ओर उसे जीवन में अन्धकार ही अन्धकार दिखाई देने लगा। दीपक इस असीम अन्धकार में विलीन हो जाना चाहता था। जीवन में पग-पग पर उसे धोखा, जाल, प्रपञ्च और फरेब दिखाई देने लगा। सोचने लगा 'सन्ध्या के प्रति दर्शाया अपार-स्नेह आज मेरे ही लिए अभिशाप सिद्ध हो गया।'

अपना कार्यालय सहयोगी मित्र दिनेश आज उसे काले नाग के सदृश दिखाई देने लगा। भिन्न-भिन्न प्रकार के विचार दीपक के मन को कुरेदने लगे। सोचने लगा—'न मालूम यह सन्ध्या कब से मेरे जीवन की सन्ध्या बनी हुई है! कब से यह दिनेश इस दीपक की बत्ती के प्रकाश में लौ लगाये बैठा था? यह नाटक कब से खेला जा रहा था?'

दीपक और सन्ध्या इस भाँति अपने-अपने विचारों में खोये अपने-अपने कक्ष में इस दीप-रात्रि के दीप गिनते रहे। तम हटा, भोर हुई। दीपक और सन्ध्या के जीवन की यह काली कलूटी निशा अपना मुँह ढाँपे चली गई। उषा का आगमन हुआ। सन्ध्या अपने नित प्रातः के कार्यों से ज्यों-त्यों निवृत हो गई। दीपक भी उसी भाँति स्नान-ध्यानादि से निवृत होकर अपने बैठक-कक्ष में आ बैठा। रेडियो ऑन किया। अभी समाचार आने में समय शेष था। विविध भारती से यह भजन आ रहा था—

"इस जग पे भरोसा न कर,
यहाँ कौन किसी का होता है!"

इस पंक्ति को सुनते ही दीपक का मन फिर से विरक्त हो गया।

वह अधीर हो उठा। इस जग के झूठे नातों से उसने सम्बन्ध तोड़ देने चाहे। उसने निश्चय किया—'आज अब सन्ध्या को सब कुछ बता दूँगा।'

सन्ध्या को भी कहाँ शान्ति थी। आँगन में धूप छिटकते ही शान्त, उद्विग्न मन से दीपक के कक्ष में प्रवेश किया। देखते ही दीपक ने कहा—'तुम आगईं? बहुत प्रतीक्षा की। शायद राज पर पर्दा डालने!'

'राज हो या पर्दा! मैं कुछ नहीं जानती। मैं अब स्पष्टतः वह सुनना चाहती हूँ जिसने मेरी हरी-भरी जीवन-बगिया को झुलसा दिया।' सन्ध्या ने आवेश पूर्वक कहा।

'तो सुनो और लो! देख भी लो अपने प्रेमी की निशानी का यह 'सुनहरा रूमाल!' यह कहते हुए दीपक ने अपने कोट की जेब से वह रूमाल निकाल कर सन्ध्या की ओर फेंक दिया।

'यह क्या? यह आप कहाँ से लाये? यह तो मेरे सन्दूक में था।' सन्ध्या ने रूमाल उठाते हुए कहा।

'हाँ, यह तुम्हारे प्रेमी की निशानी तुम्हारे सन्दूक से मैंने चुराली। माफ करना, सन्ध्या!' दीपक ने गहरा साँस भरते हुए कहा।

'कौन प्रेमी? कैसी निशानी? यह आप किसकी बात कर रहे हैं?'

'मैं तुम्हारे उसी प्रेमी किशन की बात कर रहा हूँ जिसने सप्रेम तुम्हें यह रूमाल भेंट किया।'

'कौन किशन? कैसी भेंट? यह रूमाल तो मेरे सहोदर भैया की भेंट है।'

'सन्ध्या! [illegible] बनाने का प्रयत्न मत करो, सन्ध्या! मैं स्वयं उसको [illegible] इस सन्ध्या को हाथों-हाथ यह भेंट का रूमाल देते हुए अपनी आँखों से देखा है। पर्दा डालने का असफल प्रयास मत करो। मुझे सब मालूम है।'

सुनते ही सन्ध्या के कमल-वदन पे [illegible] हो गई थी। उसकी आँखों [illegible] हो गईं। [illegible] हो गया। आँखों के सामने अन्धेरा छा गया। [illegible] जैसी स्थिति हुई। [illegible] नहीं [illegible] रही थी। [illegible] दोनों हाथों में [illegible] कर पलंग पर बैठ गई। दीपक [illegible] देखता रहा। कुछ समय [illegible] सन्ध्या ने अपना सिर उठाया और [illegible] आँखों से दीपक की ओर देखते हुई कहने लगी—

'स्वामी ! मुझ अभागिन पर इतना जुल्म मत ढाओ। सच कहती हूँ मैं किसी दिनेश को नहीं जानती।'

दीपक को अपनी आँखों देखी पर पूर्ण विश्वास था। कहने लगा—'तुम नहीं जानती, पर मैं जानता हूँ और पहचान भी गया हूँ जबकि कल सायंकाल से पूर्व तुम्हारे दीर-थाल भेजाते समय गांधी गली के मोड़ पर उसने यह रूमाल तुम्हें भेंट-स्वरूप दिया। मैं बाजार जाने हेतु उसी मार्ग पर तुम्हारे पीछे आ निकला। परन्तु उसने तुम्हें रूमाल लेते देख वहीं रुक गया। दिनेश फिर सामने की नेहरू-गली से तेजी से चला गया। बोलो, क्या सच नहीं है ? जवाब दो।'

सन्ध्या ने रूमाल उठाया। कुछ सोचने लगी। फिर कहने लगी—हाँ, याद आया पर यह बात असत्य है। यह सत्य है कि यह रूमाल उस समय गिर गया था। एक सज्जन ने मुझे पीछे से आकर अवश्य दिया। मैं नहीं जानती कि वे कौन थे एवं किधर गये।'

'सन्ध्या ! हर प्रेमी-प्रेमिका सच्चाई पर पर्दा डालने के लिए ऐसा ही कहते हैं।'

'ओ परमात्मा ! तू मुझे धरती से उठाले। अब नहीं सुना जाता।' सन्ध्या हाय विलाप करती हुई कहने लगी। परन्तु दीपक सन्ध्या से भी अधिक व्यथित था। सन्ध्या के हावभाव देखकर कहने लगा—

'यह नाटक दिखाने की जरूरत नहीं, सन्ध्या ! यह ढोंग तो अब दिनेश को दिखाना। वह आने ही वाला है। उसने दो दिन पूर्व से ही हमी के भोजन के लिये निमन्त्रण दिया है। शायद मैं न भी आ सकूँ तो भी तुम्हें तो अवश्य जाना है। अन्यथा उसका दिल मारा जाएगा।'

'भगवान के लिये कुछ तो सोच कर कहिए।'

'क्यों ! कटु सत्य बुरा लगता है ?'

इसी समय बाहर के मुख्य द्वार पर दस्तक हुई। दीपक समझ गया कि दिनेश ही होगा। कहने लगा--'लो ! वह आगया, सुनहरे रूमाल का भेंट-कर्त्ता। जाओ दरवाजा खोलो।'

सन्ध्या नहीं उठना चाहते हुए भी विवश होकर उठी। दरवाजा खोला। दिनेश ने अन्दर प्रवेश किया और सीधा दीपक की बैठक में चला गया। कक्ष में प्रवेश के साथ ही कहने लगा—'अरे भाई दीपक जी ! क्या बस अपने ही घर की दिवाली से जगमगाते रहे। बाहर की दिवाली की

आगे कहते-कहते बाहर मुख्य द्वार से आवाज़ आई—'सन्ध्या ! दरवाजा खोलो, हम आ गये हैं।' सुनते ही सन्ध्या ने रूमाल उठाया और जाते हुए कहा—'लो ! मेरे सञ्जीव भैय्या आ गये हैं।' सन्ध्या ने दरवाजा खोला। सञ्जीव के अन्दर आते ही सन्ध्या ने चरण-स्पर्श किया। सञ्जीव अपना सामान सन्ध्या को सौंप दीपक के बैठक-कक्ष की ओर बढ़ा। प्रवेश होते ही देखता है कि दीपक जी के साथ एक सज्जन और बैठे हैं। परन्तु दोनों में कोई वार्ता नहीं हो रही है। दोनों ने उठकर सञ्जीव का स्वागत किया, फिर तीनों ही बैठ गये। सन्ध्या ने अपने सञ्जीव भैय्या को जल पिलाया और चाय बनाने चली गई। पर कक्ष में निर्विघ्न शान्ति देख सञ्जीव से नहीं रहा गया। कुछ कहना ही चाहा कि दिनेश ने जाने की सञ्जीव से स्वीकृति चाही। पर सञ्जीव ने उन्हें चाय पीने तक बैठने का आग्रह किया। इतने में सन्ध्या चाय ले आई। सञ्जीव ने दिनेश के जाने की शीघ्रता की बात कहते हुए सर्वप्रथम दिनेश को चाय देने को कहा। पर सन्ध्या को सङ्कोच करते देख सञ्जीव ने दिनेश की ओर चाय बढ़ाई। पर आज दिनेश का यहाँ चाय पीना विष-तुल्य हो रहा था। सञ्जीव द्वारा दिये जा रहे कप की ओर हाथ बढ़ा कर कहा—

'क्षमा करिये, मैं अभी चाय नहीं पीता हूँ।'

'क्यों ! आप चाय नहीं पीते !' सञ्जीव ने कहा।

'पीता तो हूँ, परन्तु अभी तमन्ना नहीं है।'

'अजी, तमन्ना को रखिये एक ओर। लीजिये आपको पीनी ही होगी।' यह कहते हुए सञ्जीव ने चाय का कप पुन: दिनेश की ओर बढ़ाया। दिनेश ने हाथ बढ़ा कर पुन: रोक देना चाहा, परन्तु सञ्जीव ने आग्रहपूर्वक देना चाहा। इसी देन और मना करने के शिष्टाचार ही शिष्टाचार में चाय सञ्जीव के हाथ और कपड़ों पर गिर गई। कप को शीघ्र नीचे रख सञ्जीव ने धोने के लिये उठना चाहा, परन्तु सन्ध्या ने रोक कर कहा—'ठहरिये, यहीं पास इस रूमाल से पोंछ लीजिये।' यह कहते हुए सन्ध्या ने अनायास ही वह रूमाल सञ्जीव को दे दिया। रूमाल हाथ में लेते ही सञ्जीव कहने लगा—

'सन्ध्या ! मेरी भेंट को तुमने इतनी तुच्छ समझी कि अब से मैंने यह रूमाल तुमको दिया है तुमने इसको कभी भी उपयोग में नहीं लिया। यह आज तो सर्वप्रथम ही दिखाई दे रहा है।

[illegible]

'नहीं, भैय्या ! इसे उपयोग में लिया तो है ।' सन्ध्या ने सहज भाव से कहा । 'लो, तुम इसे नवीन ही रखो । यह देखो ! इसी के साथ का एक पीस मेरे पास भी रखा है । यह कितना पुराना दिखाई दे रहा है । इसे उपयोग कहते है ।' यह कहते हुए सन्जीव ने अपनी जेब का रूमाल निकाल कर दिखाया । और उसमे चाय के दाग साफ करने लगा । पश्चात् सन्ध्या ने सन्जीव के हाथ और कपडे पर के दाग धुलवा दिये । सन्जीव पुन. अपने स्थान पर आकर बैठ गया । दिनेश और दीपक रूमाल का प्रसङ्ग ध्यान-पूर्वक सुन रहे थे । सन्जीव के बैठने पर दीपक ने पूछा—

'क्या ! यह सुनहरा-रूमाल सन्ध्या को आपने दिया है ?'

'क्यों ! आप कहे तो इससे भी अच्छा एक आपको भी भिजवा दूँ ।' और इसी कथन के साथ सन्जीव हल्का-सा मुस्करा दिया, परन्तु दीपक के चेहरे की हवाइयाँ उड़ने लग गई । उसे अपने पैरो तले धरती खिसकती-सी अवगत होने लगी । दिनेश ने उसी समय सन्जीव से कहा—

'आप कृपा कर अब किसी को कोई भी रूमाल भेंट स्वरूप मत भेजिए । यह एक रूमाल जो आपने अपनी बहिन सन्ध्याजी को दिया है, इसने पहले से ही उत्पात मचा रखा है ।'

'क्यों ! रूमाल और उत्पात ! यह कैसा समन्वय है ?' सन्जीव ने कहा ।

'हाँ, भैय्या । आपके इस सुनहरे रूमाल ने भोजन-पानी तक छुड़वा दिया है ।'

'यह कैसा प्रसङ्ग है समझ मे नही आया । दीपक जी क्या बात है ?'

पर दीपक क्या प्रत्युत्तर देता । वह तो ऐसा हो रहा था मानो प्रचण्ड आँधी या तूफान मे गिर गया हो । आँखें नीचे झुक गईं । शर्म से दबा जा रहा था । शान्त एवं चुप देख दिनेश ने कहा—

'सन्जीव भैय्या ! वह क्या बोलेंगे । मैं सुनाता हूँ यह सारी राम-कथा ।'

यह सुनते ही बिजली-सी द्रुत गति से उठ कर दीपक दिनेश के पैरों पर गिर पड़ा । कहने लगा—'दिनेश भैय्या ! भगवान् के लिए मुझे माफ कर दो । वास्तव मे तुम दिनेश हो और मैं टिमटिमाता दीपक ही हूँ । और सन्ध्या ! तुम सन्ध्या नही, परन्तु मेरे जीवन की उषा हो । सन्ध्या ! भूल जाओ मेरी दुश्चिन्ता को ।'

यों कहता-कहता दिनेश के पैरों पड़ गिड़गिड़ाने लगा। पर सञ्जीव के कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था। सञ्जीव विस्मित होकर पूछने लगा—

'यह क्या बात है, दीपक जी ! कैसी दुश्चिन्ता ? कैसी उषा ?'

दीपक अश्रुमय हो फिर भर्रानी आवाज़ में कहने लगा—'सञ्जीव बाबू ! आपने मेरे उजड़ते हुए, तहस-नहस होते हुए गृहस्थ-जीवन को बचा लिया। आपने हमारे लिए सञ्जीवनी का काम किया है। आज मुझे अनुभूति हुई कि आँखों देखा सत्य भी असत्य हो जाता है। सञ्जीव भैय्या ! आपकी भेंट, सुनहरा-रूमाल वस्तुतः सुनहरा है। आप उस मेरी घातक भ्रमना को भगवान् के लिये सुनने का आग्रह न करें। मैं सभी का दोषी हूँ।' दिनेश ने दीपक को उठाकर गले लगाया, परन्तु सञ्जीव सोचता रहा—

'कैसी भ्रमना ? कैसी सञ्जीवनी ? और इस सुनहरे रूमाल से कैसा सम्बन्ध ?"

16

रोता हुआ आईना!

ब्रजेश 'चंचल'

* * *

बड़ी बी चुपचाप आकर उनके कमरे में पीकदान रख आई, फिर चारों ओर चोर नजर से देखा, कोई नहीं था, धीमे से बोली, "न होय बड़ी अम्मा थोड़े दिन रशीदा के यहाँ चली जाओ। जाड़ो बाद जब दमा कुछ दम ले, तब चली अइयो।" बड़ी अम्मा के झुर्रियोंदार चेहरे पर कुछ वक्त तैर गया। "अल्लाह उमर बख्शे इन नदीदों को, जो आज मेरी ही परवाह नहीं करते। मैं कोई यतीम तो हूँ नहीं, जो दर-बदर ठोकरें खाती फिरूँ! अभी तो ये घर, जायदाद, सभी तो मेरे शौहर के बसाए हैं।' किसी तरह की कोई सँभाल नहीं होने पर भी बुढ़िया घर नहीं छोड़ना चाहती थी, और बड़ी बी इस घर की सबसे पुरानी नौकरानी थी, बड़ी अम्मा से दसेक साल छोटी, जो बिचारी सलमा (बहू) से आँख बचाकर हमदर्दी दिखाया करती थीं।

बड़ी अम्मा के बेटा-बहू तो तीन साल के अन्तर से पहले ही चल बसे थे। तब कितना छोटा था सुलेमान! रशीदा ने बहुत कहा था अम्मा से उसे

ले जाने को, मगर दादी ने यह कहकर टाल दिया, 'अरी जा री, एक ही तो निशानी है उन दोनों की। इसे भी ले जाकर तू क्या मेरा आँगन ही सूना कर देगी। खुदा न करे, मेरा बच्चा मुझसे कभी भी अलग रहे।' काफी पैसा जमा किया था वकील नन्हे मियाँ ने। अपने जमाने के माने हुए वकील थे। उन्होंने जिस भी केस में एक बार हाँ करदी, फिर मजाल नहीं वह मुश्किल मालूम हो जाये!

उसी पैसे के बलबूते पर बड़ी अम्मा ने राजकुमारों-सा पोषण किया, नाती का। उसी की देख-भाल के लिये बड़ी बी को रखना पड़ा। बड़ी अम्मा की तो ख्वाहिश थी कि पढ़ लिखकर सुलेमान भी अपने दादाजान की तरह वकील ही बने। मगर वह बन गया डॉक्टर! चार-पाँच साल दूसरे शहर में रहा अकेला! और जब दादी के खत देने पर यहाँ ट्रान्सफर कराके लौटा, तो अकेला नहीं, सलमा भी उसके साथ थी, तब हैरत में रह गई बड़ी अम्मा! अपने चश्मे को नीचा-ऊँचा कर पूछ बैठी, "यह कौन है बेटा?"

'यह एक लड़की है बड़ी अम्मा! कोई अजूबा नहीं है।" सुलेमान के स्वर में रूखापन था।

मगर बड़ी अम्मा भी इतनी जल्दी समझौता करने वाली नहीं थी। वे उसी वक्त तमक कर बोली "लड़की है जो तो मुझे भी दीख रही है। मगर है कौन? कहाँ की है ...." एक साथ कई सवाल किये बड़ी अम्मा ने, थोड़ी देर चुप्पी! तभी बड़ी अम्मा ने देखा कि एक तीखी-सी बिजली कड़क उठी आँगन में। "वह क्या बतायेंगे, मैं खुद बताती हूँ, मैं हूँ सलमा कुरेशी बी. ए. एल. एल. बी! मैं मुरादाबाद की हूँ, और मेरठ में विवाह किया है दोनों ने! और अब हम दोनों मियाँ-बीबी हैं।

सोच में डूब गईं बड़ी अम्मा! आँखें नीची कर ली! एक-दो मिनट बाद भारी आवाज में सुलेमान की तरफ मुखातिब हो बोलीं, "तो आखिर तुमने हमारी आखिरी हसरत का गला घोंट ही दिया। अब कौन जिन्दगी में सुनूँगी मैं अपने पोते की शादी की शहनाई? किन लोगों को दावतनामा भेजकर जाहिर करूँगी अपनी दरियादिली?

"जमाना बहुत आगे बढ़ गया बड़ी अम्मा! अब केवल लड़के-लड़की की पसंद का सवाल है। दावतों-वावतों की फिजूलखर्ची मुझे कतई पसन्द नहीं! अब मैं कोई बच्चा तो हूँ नहीं! पढ़ा लिखा, जिम्मेदार अफसर भी हूँ।

न मुझे आपकी हवेली की चाहत है न दौलत की। वह तो आपकी जईफी का ख्याल कर चला आया हूँ .... वरना !"

"ठीक ही तो कह रहे हैं सन्ने मियाँ, बड़ी बी ने बात साधी, और अम्मा तुमको दो रोटी के सिवा चाहिये भी क्या ?"

बड़ी अम्मा को लगा, जैसे आँधी घुस आई हो घर में। जिसमे बहुत कोशिश करने पर भी उनका पाँव जम नहीं पा रहा हो !

बड़ी बी ने अम्मा का हाथ थाम कर सीधे उनके कमरे मे आराम कुर्सी पर जाकर बिठा दिया, धीमे से कहा "अब हो गया, सो हो गया। शादी तो डॉक्टर भैय्या को ही करनी थी, सो कर ली।"

तब से बड़ी अम्मा को लगने लगा, कि वह काफी थक चुकी है। उनके जिस्म में ताकत जैसी कोई चीज नहीं रह गई है। ऊपर वाले सारे कमरे, हॉल, बाथरूम, लेट्रिन पूरा पोर्शन उन्ही के काम आता है। बड़ी अम्मा का अपना वही पुराना नीचे वाला कमरा और बरामदा है।

सुबह होते ही धूप सेकने के बहाने बड़ी अम्मा बरामदे मे तख्त पर लगे गलीचे पर आ बैठती है। चाय, नाश्ता, खाना सुबह-शाम बड़ी बी आकर खुद रख जाती है। बड़ी अम्मा के वक्त की औरतें अभी भी हैं जो अक्सर ही बरामदे में आ जाती हैं, फिर चलता है चर्चाओं का दौर।

"खुदा का दिया सब कुछ है तुम्हारे पास ! फिर क्यूँ नहीं हज कर आती ?"

"अब नहीं रहा हज का टैम ! चारों ओर लूट-खसोट मची है।" सबसे अलग बात उठाती बतूल की दादी, जो तकरीबन बड़ी अम्मा की ही उमर की थी। बजोलानी पोते की बीबी का मुँह तो दिखा दे एक रोज ! सुनते हैं, निकाह तो अपनी मर्जी से ही कर लाया, पर मुहल्ले की औरतों से यह पर्दा कैसा ?

जाने कैसे सुन ली सलमा ने यह बात !

फुर्ती से झरोखे में आकर बोली, "न मैं पर्दानशी हूँ, न किसी बादशाह के हरम की हूर ! तुम जैसी जाहिल औरतों से बात करना तो दूर मैं देखना तक पसंद नहीं करती !"

उस दिन के बाद से बड़ी अम्मा के पास कोई नहीं आता अब। बड़ी बी के अलावा कोई उनसे यह पूछने वाला तक नहीं, कि उन्होंने कुछ खाया-पिया भी या नहीं !

सुलेमान को मरीजों से फुर्सत नहीं, और जब खाली होता तो सलमा के प्रोग्राम आगे से आगे बने रहते !

पिछले दो महीनों से बड़ी अम्मा की पुरानी खाँसी कुछ और ही रंग पकड़ती जा रही थी। दस-दस मिनट तक वह लगातार खाँसती ही रहतीं, और जब बलगम निकल जाता, तो ऐसी निढाल होकर लेट जाती, जैसे हाथ-पैरों में जान ही न हो !

फिर भी अपने रुतबे को अम्मा इतना सस्ता नहीं बेचना चाहती थी, कि सलमा के आगे घुटने टेक दे, और इतने ओछेपन पर भी नहीं उतरना चाहती थी, कि 'सुलेमान को अपना फर्ज याद दिलाने के लिये अपने किये जा चुके एहसान को दुहरायें।'

दो-चार दिन के अन्तर से सुलेमान पूछ लिया करता था। "कैसी हो बड़ी अम्मा ?" और जब तक बड़ी अम्मा जवाब देने को मुँह खोले, वह ग्रस्त-सा दिखाई देकर चल देता था।

"वक्त वाकई बहुत बदल गया री !" बड़ी अम्मा नौकरानी से लम्बी उसाँस भर कहतीं।

"हाँ मालकिन, मगर कभी-कभी वक्त के साथ समझौता करने से भी तो मुश्किलें आसान हो जाती हैं।"

"तो तेरा मतलब है मैं अपने रुतबे को रखने के लिये पहले उसके आगे-पीछे फिरूँ। तहज़ीब की ज़िन्दगी छोड़कर अब उस ज़ाहिल ज़माने के पीछे दौड़ूँ, जिसको अपने पराये की पहचान नहीं रह गई है।"

"मेरा यह मतलब नहीं मालकिन कि आप किसी कदर झुकें, मगर इसका यह भी तो मतलब नहीं, कि बहू-बेगम से आप आँख ही नहीं मिलायें, दोनों ओर से लगातार खिंचते रहने पर तो मज़बूत रस्सी भी टूट जाती है।"

चहल-पहलों ईद के मुबारक मौके पर आज बड़ी अम्मा का [illegible] कुछ ढीला हो गया था। उन्होंने रेशमी साटन का चूड़ीदार पाजामा, मखमली कमीज़ और आबेरवाँ की [illegible] ओढ़नी पहन अरसे बाद आईना देखा था, और तभी उनके कानों में सुलेमान की माँ की आवाज़ आई थी—

"[illegible] बड़ा सजती है अम्मी जान !"

"खुश रहे दुलहन बिटिया" और अम्मा ने अपनी बहू को बाहों में भर

[illegible]

लिया था, और उसी क्षण सुनहरी काम का अपनी शादी का गरारा, कमीज और जड़ाऊ झूमर दे दिये थे। मैंने बड़ी हसरत से इसी दिन के लिए तो रक्खे थे।

"अम्मी जान! इतने कीमती जोड़े को एक दिन में भी सुलेमान की बहू के लिए सँभाल कर रखूँगी।"

आईना रो पड़ा बड़ी अम्मा के साथ-साथ!

तभी बड़ी बी ने आकर आदाब बजाया, "यह क्या मालकिन, ऐसे मुबारक मौक़े पर यह रोना कैसा?"

थोड़ी-सी हमदर्दी पाकर अम्मा की आँखें और भी पनीली हो उठीं। तभी सुलेमान ईदगाह से नमाज पढ़कर लौटा तो दूसरे दरवाज़े से सीधा ऊपर चला गया, और थोड़ी देर बाद ही दोनों के ठहाके कमरे में गूँजने लगे।

तभी बड़ी बी ने जाकर कमरे में आदाब बजाया, और बोली, "एक बुढ़िया हुज़ूर को मुबारकबाद देने आई है, और नज़र भी करना चाहती है कुछ!"

"कौन बुढ़िया?" सुलेमान ने पूछा।

"होगी कोई यतीम, या जरूरतमंद!" सलमा ने कहा।

"यतीम और नज़र करना! कुछ समझ में नहीं आता। अच्छा चलो, मैं ही नीचे आता हूँ।"

ईद मुबारक हो डॉक्टर साहब! और ये सँभालो अपनी अमानत!" कहकर बुढ़िया ने चाबी का एक बड़ा-सा गुच्छा सुलेमान के सामने फेंक दिया।

"कौन, बड़ी अम्मा! आप!!"

"नहीं डॉक्टर साहब, आपके न कोई अम्मा है न बड़ी अम्मा! आपकी बड़ी अम्मा तो उसी दिन मर चुकी, जिस दिन आप अपनी बदली कराके यहाँ तशरीफ़ लाये।"

शर्म से नीची आँखें कर लीं सुलेमान ने। बोला, "यह आप कैसी बातें कर रही हैं बड़ी अम्मा?"

"मर गई बड़ी अम्मा और वीरान हो गया उसका चमन!" यह हवेली, जायदाद, पैसा-कौड़ी सब तुम्हारे बाप-दादाओं के हैं, जिनको मैंने अब

तक हिफाजत की, और अब जब यहाँ पर मेरी ही हिफाजत करने वाला कोई नहीं है, तो मैं यह बखेड़ा सँभालने में भी लाचार हूँ। मुझे इन पिछले दिनों में न पैसे की भूख है न जेवर की। केवल अदब से रोटी चाहिए दोनों वक्त! जो और जगह भी मिल जाएगी।"

"बड़ी अम्मा!" लगभग रोया-रोया बोला सुलेमान।

"मैं जा रही हूँ रशीदा के घर, कभी नहीं लौटने के लिए। जब वक्त ने हमारा खून ही हमसे छीन लिया, तो ऐसी जगह रहने से फायदा भी क्या?"

कहकर अपनी ओढ़नी ठीक करती हुई बड़ी अम्मा बरामदे में आ गईं और पीछे-पीछे एक बड़ा-सा झोला लेकर बड़ी बी भी उन्हीं के पीछे चल दीं।

"मगर सुनो तो सही बड़ी अम्मा! बड़ी बी!"

दुःखी मन से टोकता ही रह गया सुलेमान। मगर न बड़ी अम्मा ने मुड़कर पीछे देखा और न बड़ी बी ने।

17

उद्देश्यनिष्ठा

डॉ० शिव कुमार शर्मा

* * *

समाज मथर गति से चल रहा था। सब अपने-अपने काम में लगे थे। अपने अग्रज को जैसे काम करते देखा, प्रत्येक वैसे ही काम करता चला जा रहा था। किसान खेतों में वैसे ही काम करते थे जैसे उन्होंने अपने पूर्वजों को काम करते देखा था। कारखानों में मजदूर काम करने जाते। ऑफिस में अधिकारी और बाबू लोग और स्कूलों में शिक्षक काम कर रहे थे। जैसे शुरू में उन्हें काम करना बताया था वैसे ही अब भी कर रहे थे। समयानुसार उनके पद भी बदलते परन्तु काम करने का दृष्टिकोण वही चला आ रहा था। जैसे पहले काम करने का तरीका था वैसा ही नगीरा अब भी बना हुआ था। अमुक तरीके से काम करना क्यों शुरू किया गया था कोई अपने से नहीं पूछता। उस तरीके से काम करने के क्या नतीजे आ रहे हैं। कोई नहीं देखता वैसे काम करते रहने की बजाय कोई दूसरा अच्छा तरीका भी हो सकता है—कोई कभी नहीं सोचता। आखिर यह सब कुछ क्यों? यह बात किसी के भी मस्तिष्क में

कभी नहीं उपजती। प्रत्येक वैसे ही चलता जा रहा था जैसे चलने का रिवाज बन गया था। कहाँ पहुँचना है? किधर चल रहे हैं? गन्तव्य से कितने दूर हैं? दूरी कितने दिनों में पार होगी? दूरी जल्दी तय करने के भी क्या कोई उपाय हैं? दूसरों के मुकाबले में हमारी क्या गति है? कोई नहीं सोचता। सभी पर 'रट' का एक छत्र शासन था। यह शासन इतना जम चुका था कि किसी को 'रट' के अलावा कुछ और नजर ही नहीं आता।

तभी एक लड़की पैदा हुई। 'रट' के विरोधी मौलिकता और सूझबूझ वाले थोड़े से लोग इसे पहचान पाये। वे चाहते थे कि 'रट' के स्थान पर इस लड़की का एक छत्र शासन स्थापित हो। परन्तु 'रट' में पड़ी हुई अनंत जनसंख्या ने इसे नहीं पहचाना। इसे स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। अंततः लड़की को पालने का काम एक ऐसे बुजुर्ग अधिकारी को सौंपा गया जो वानप्रस्थी था। सेवा में रुचि रखता था। उससे कहा गया—"बाबा! अब इसका पालन-पोषण ही तुम्हारा काम है। इसी काम से तुमको रोटी-रोजी मिलेगी।" इस वानप्रस्थी ने सोचा—यह भी खूब है। भगवान् शंकर की कृपा है। प्रशासन की महारानी से पीछा छूटा। सन्यास की तैयारी का अच्छा अवसर मिला। वह खुशी-खुशी इस लड़की के लालन-पालन में जुट गया। उसने एक छोटा सा आश्रम बनाया। अपने जैसे एक-दो वानप्रस्थियों को और मौलिकता और सूझबूझ वाले युवक नौजवान सेवा भावियों को अपने प्रमुख सहायकों के रूप में आश्रम में चले आने को प्रेरित किया। आश्रम का एक कार्यालय खोला गया। आश्रम की सुरक्षा, सफाई, व्यवस्था और अलग-अलग कारोबार की दृष्टि से लेखा शाखा, निम्न वर्ग और चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी नियुक्त किये गए। सभी आवश्यक साज सामान जुटाया गया। लड़की के लिए एक सुन्दर रथ की व्यवस्था की गई। बाबा आने वाले सभी को कहते "रट" के शासन से मुक्ति के लिए जो शहीद होने को तैयार हों और प्रशासन की महारानी की उपासना से जिनकी तृप्ति हो गई हो वे यहाँ सेवक बनकर आ सकते हैं। जिन्हें मेवों की भूख है उनके लिए यहाँ स्थान नहीं है। जिसे इस आश्रम कन्या की सेवा में तन-मन से जुट जाने में मजा आ सकता है उनके ही लिए यहाँ सुख है शेष सबको यहाँ दुख के अलावा और कुछ नहीं मिलेगा।

आश्रम चल पड़ा। बाबा की चौकीदारी पर यही फिक्र रहती कि लड़की को कोई तकलीफ न हो। लड़की सुख से रहे। उसका [illegible] विकास होता

जावे। इसका इस आश्रम में ऐसी ही लडकियों के लिए स्थापित अन्य आश्रमों की तुलना मे सर्वश्रेष्ठ विकास हो। बाबा, जब लोगो को काम करते, सोचते विचारते लिखापढी करते देखते तो बार बार और कभी कभी लगातार कहते—'तुम्हारे इस सब कुछ से इस लडकी के विकास मे कितनी मदद मिलती है। यही इस सब कुछ वाजबियत की कसौटी है।" बाबा सभी साथियों को बुलाते और घटो उनके साथ बैठकर उस लडकी के लिए विचार विनिमय करते। बाबा हर कभी हर किसी साथी के आसन पर जा पहुँचते और वही ऐसा विचार विनिमय शुरू कर देते। जब बाबू और आश्रम के भृत्य शाम को अपने अपने घर जाने लगते तब बाबा अपने खास खास साथियो को बुलाते और पूछते "किस किस को घर पर काम है?" करीब करीब सभी उत्तर देते "किसी के घर पर काम नही है।" बाबा कहते, "तब बैठिये" वह घटो बिठाये रखते। लड़की के बाबत अपने विचारो को व्यक्त करते एक एक से पूछते, "तुम्हारी क्या राय है?" सभी से सुभाव लेते। सुभावो पर विचार व्यक्त करते। ऐसे सुभाव जो लडकी के लिए ज्यादा हितकर नही होते उन्हे ज्यादा हितकर बनाने में मदद करते। रात्रि हो जाती। तारे निकल आते। बाबा कहते—"ये सारी बातें यही छोडकर न जाना। इनका बोझ दिमाग मे लेकर जाना। जब ऐसा बोझ लादे-लादे फिरने का व्यक्ति को अभ्यास हो जाता है तब फिर उसमें मौलिक विचार पैदा होने लगते है। जब मौलिक विचार पैदा होने लग जावें तो समझो सिद्ध प्राप्ति की शुरुआत हो गई। इन्सान बहुत है; परन्तु ऐसे इन्सान जिनके पास मौलिक विचार है वे ही इस आश्रम को कुछ दे सकते हैं। वे ही इस आश्रम कन्या के लिए हितकारी भी साबित हो सकते हैं अत. इन सब बातो पर विचार करते जाओ। भार को बनाये रखो। कल फिर बातचीत करेंगे।" अगर कोई कहता—"बाबा यह भी कोई बात है कि दिमाग को चौबीसो घटे यो ही लदा रखें?" तो बाबा कहकहा लगाकर हँस देते। वे कहते "जो अपने आपको घर की तरफ से 'रार्टट आफ' करा लेगा वही इस आश्रम की सेवा मे सुखी रहेगा।" बाबा आश्रम कन्या के विकास में मदद और सुभाव लेने मे नही चूकते। कोई आश्रम मे मिलने आता तो-यही बात, और बाबा-बाहर जाते और वहाँ जो-जो भी मिलते उन सभी से यही बात। यह बात—समय, स्थान और व्यक्ति—सभी सीमाओ को लाँघ चुकी थी। बाबा को बस यही बात कि इस कन्या को बड़ी करने हेतु स्थापित इस आश्रम का एव इसकी समस्त आर्थिक भौतिक

एवं मानवीय साधनों का इस कन्या के हित में किस प्रकार ज्यादा से ज्यादा उपयोग हो ।

बाबा के आश्रम के साथियों में से कोई अगर बाबा के सामने आश्रम के सुधार की बात ले जाता या अपनी कोई समस्या ले जाता तो भी बाबा उसी रुचि से उसे सुनते, समझते और विचार करते जैसे वे लड़कों के विकास की बातों के समय किया करते थे । बाबा यह भी कहा करते थे कि आश्रम का काम तभी चलेगा जब सब कार्यकर्ता उनके काम के सम्बन्ध में पूरी तरह आश्वस्त होंगे, अभिप्रेरित होंगे । बाबा ने जिस-जिस को जो-जो उत्तरदायित्व और काम दिए हुए थे उसको उन दायित्वों को पूरा करने के अधिकार और साधन भी पूरे-पूरे जुटाये हुए थे । ऐसे साधन जुटाने में उन्होंने अपनी निजी असुविधा को कभी कोई महत्त्व नहीं दिया । उत्तरदायित्वों और शक्ति, साधन और सुविधाओं का संतुलित विकेन्द्रीकरण, बाबा ने साथियों से काम लेने का प्रमुख गुर माना था । जो-जो काम लोगों को दिया हुआ था उसके सम्बन्ध में बाबा सबसे पूछते रहते कि तुमको तुम्हारे काम में कितना मजा आ रहा है ? अपने काम में किसी को मजा न आ रहा होता तो उसके रुझान का काम सौंपते या उसके काम के स्वरूप को उसकी राय से ऐसा परिवर्तित करते कि वह काम उसकी रुझान का बन जाता । बाबा कहा करते थे कि लड़कों का विकास, इस आश्रम का विकास और मेरे कार्यकर्ताओं का विकास तीनों अलग-अलग नहीं हैं । वरन् एक ही हैं । आश्रम के कार्यकर्ताओं के चेहरे खिले हुए हैं तो आश्रम का चेहरा खिला हुआ है । मेरे कार्यकर्ताओं का विकास हो रहा है—इसका अर्थ है आश्रम विकसित हो रहा है । किसी कार्यकर्ता का मुँह मुरझाया देखकर बाबा का हृदय काँप उठता । उसकी समस्या के निराकरण में बाबा अपने साथियों सहित जुट पड़ते और बाबा को चैन तभी मिलता जब उसका चेहरा खिल उठता । उसकी समस्या का निराकरण हो जाता ।

जब लड़की बाहर घूमने को निकलती तो बाबा भी रथ में उसके पीछे बैठते । लड़की इस रथ में बैठ कर आश्रम के बाहर ताजी हवा में, प्राकृतिक वातावरण में और समाज में इसकी भी विभिन्न स्थितियों के अध्ययन हेतु घूमने निकला करती थी । बाबा की अनुपस्थिति में आश्रम के वरिष्ठ कार्यकर्ताओं में से कोई न कोई लड़की के पीछे रथ में बैठ कर जाता । लड़की ... के मनोरंजन हेतु ऐसा किया जाता था । लड़की कभी रथ में बैठकर अकेली

निर्मलमाला गुलमोहर

बाहर नहीं निकली। लड़की के बिना रथ कभी भी आश्रम से बाहर नहीं निकला।

बाबा लड़की के साथ जब कभी आश्रम के बाहर निकलते तो सब से पूछकर चलते कि किस-किस का क्या-क्या काम करना आऊँ। कुछेक की जिनकी इच्छा व्यक्त होती—बाबा जरूर साथ ले जाते। जिन्हे छोड़ जाते उन्हें काम बता कर जाते। लौटते ही लड़की की बात उन्हे सुनाते। पीछे वालों की बातें सुनते। विचारों का लेखा-जोखा मिलाते और फिर काम पर जुट जाते। ऐसे ही जब अन्य लोग आश्रम के काम से बाहर जाते तब भी हुआ करता था। यहाँ तक कि कोई अपने निजी काम से भी बाहर जाता तो बाबा उस काम के होने में अपने प्रभाव को काम मे लाने मे कभी कोताही नहीं करते। यों तो प्रत्येक अपने व्यक्तित्व से अपनी शक्ति और सामर्थ्य को स्वीकार करते हुए बाबा के प्रभाव और शक्ति से स्वयं को ओतप्रोत मानता था। बाबा कभी-कभी यह भी कहते—"मैं चला जाऊँगा, परन्तु जब मैं इस आश्रम को छोड़ूँगा तो तुम लोग अपने मे से ही मेरे जैसे कई एक को पा लोगे। मेरा यहाँ लड़की की सेवा के साथ लड़की के मेरे ही नमूने के कई सेवक बना कर भी रवाना होने का जिम्मा है।"

बाबा कन्या को रुचे और पचे ऐसा भोजन बनवाते। उसे रुचे उन्ही तरीकों से उसे खेल खिलाते, कहानियाँ सुनाते, समझाते, बुझाते, प्रसन्न रखते और उसके विकास में सहायक होते। बाबा ने जब सब आश्रम वासियो को यह दिखा दिया कि मेरा अस्तित्व यहाँ इस लड़की के कारण है क्योंकि यह आश्रम ही इसके लिए बना है। तो सभी आश्रमवासियों ने भी अपने को इस लड़की और आश्रम की सेवा के लिए सौंपे गये अपने-अपने काम मे वैसे ही लगा दिया। बाबा लड़की को शुरू मे पलने में झुलाते, फिर लड़की के घुटरन चलने के अभ्यास को बढ़ाने मे सहायक हुए और फिर बाद मे जब वह खड़ी होने लगी तो उसे गुडलिये के सहारे चलाते और बाद मे अपनी अंगुली के सहारे उसे घुमाने फिराने लगे। उसे अपने साथ आश्रम के बाहर घुमाने ले जाते। कन्या जब-जब जिस-जिस स्थिति मे हो उसी स्थिति मे उसके विकास मे कैसे मददगार बना जावे यही एक काम बाबा ने अपना रखा था। यही बात उन्होंने आश्रम के उनके साथियों को समझा रखी थी। समस्त आश्रम वासियो का उपयोग बाबा इसी उद्देश्य से करते चले गये।

*उद्देश्यनिष्ठा

क्रमश. कन्या 4 वर्ष की हो गई। बाबा के सन्यासी बन कर आश्रम छोड़ने की तिथि आ गई। बाबा इस कन्या को और समस्त आश्रमवासियों को भावविह्वल छोड़ कर चले गये। सिर्फ यह कहते हुए, "जब यह आश्रम शुरू हुआ था मैं यहाँ अकेला आया था। अब इस आश्रम में मुझे जैसे कई मेरे इस कार्यकाल मे तैयार हो चुके हैं। अगर कोई इनमें से किसी को भी यहाँ का मेरा पद दे दें तो आश्रम ठीक वैसे ही चलेगा और लड़की के विकास का क्रम वैसा ही कायम रहेगा जैसा मेरे समय में था। आश्रम की सार्थकता मेरे बाद मे भी ऐसी ही बनी रहेगी। इस तरह लड़की का क्रमशः विकास होते हुए निश्चित ही एक ऐसी स्थिति आ जावेगी जब इस लड़की का सारे समाज पर एक छत्र शासन होगा।"

: 2 :

बाबा के चले जाने के बाद भी आश्रम की व्यवस्था वैसी ही चलती रही। कई दिन तक बाबा का स्थान खाली रहा। तत्पश्चात् एक दूसरे आश्रम के एक बाबा को इस आश्रम का काम सौंपा गया। ये बाबा क्रमशः इस आश्रम मे आये। कार्यभार संभाला। पहले बाबा की जगह दूसरे बाबा ने ली।

इन बाबा की कार्यप्रणाली भिन्न प्रकार की थी। इनको अपने स्थान पर बैठे रहकर काम करते रहने मे ज्यादा मजा आता था। कभी भी किसी साथी के आसन पर जाना और काम की बात करना इन्हें पसन्द नहीं था। कोई सामान्य आश्रम कार्यकर्ता सामने आ जाता तो मुस्करा लेते। बात कम करते। बाबा अपने प्रमुख सहयोगी आश्रमवासियों से भी कम बोलते थे। कार्यालय के लेखक जो-जो पत्र सामने प्रस्तुत करते उन पर बाबा राय जाहिर कर देते। जब इनकी राय आश्रम की नीति के विरुद्ध होती और नीति सम्बन्धी पत्र प्रस्तुत किये जाते तो भी अपनी राय पर कायम रहते। पुराने बाबा की कही कोई बात चल पड़ती तो इनके चेहरे से यह पढ़ा जा सकता था कि ऐसी बात सुनना इन्हें पसन्द नही है। बाबा अपने विचार कभी जाहिर नहीं करते। आश्रम हराभरा रहे और इसका काम लड़की की सेवा में आगे कैसे बढ़े—इस बाबत आश्रमवासियों को इकट्ठा करके बातचीत करना इन्हें पसंद नहीं था। अगर कोई कार्यकर्ता आश्रम के काम के सम्बन्ध में साधनों की व्यवस्था की इच्छा जाहिर करता तो उस पर विचार करने।

[सिलसिलाना गुलमोहर

अगर वे साधन इनके काम में नहीं आ रहे होते तो उपलब्ध हो जाते। काम करते रहने वाले अपने आप काम करते रहे। यह बाबा की दृष्टि से ठीक था। अगर किसी की अपने आप काम करने की आदत नहीं थी तो उसके लिये बिना काम किये भी आश्रम में रहकर अपना गुजारा चला सकने में कोई कठिनाई नहीं थी। बाबा कभी किसी से कुछ नहीं पूछते। इन बाबा को ऐसी बातें अच्छी नहीं लगती जो इनके खुद के आनंद और आराम के सहायक नहीं होती थी। जो लोग इनके इर्दगिर्द घूमते रहते वे धीरे धीरे इनके निकट पहुँचने लगे। इन बाबा के सुख की क्रमश वृद्धि होने लगी। लड़की के स्थान पर आश्रम का केन्द्र क्रमश बाबा ही बनने लगे। शायद इन्होंने यह मान रखा था कि आश्रम मेरे लिये ही स्थापित हुआ है। बाबा का जब मन होता रथ मंगवा लेते। लड़की के लिये यह रथ आया था, यह बात बाबा को याद ही नहीं आती। लड़की के बैठने की जगह पर स्वय बैठते और यात्रार्थ चल पड़ते। आश्रमवासियों को बाद में पता लगता कि बाबा बाहर गये हैं। कोई नहीं जानता कि बाबा कब लौटेंगे। यकायक बाबा प्रकट हो जाते। बाबा कहाँ गये थे–किसी को कोई पता नहीं। बाबा कभी नहीं बतलाते कि कहाँ गये थे। आश्रम का क्या काम कर के आये हैं-आश्रमवासियों को पता भी नहीं लगता। जिसके लिये यह आश्रम कायम हुआ था क्रमश उस लड़की की संभाल घटने लगी। जो उसकी संभाल यह जानते हुए किया करते थे कि यह आश्रम इसी के लिये तो कायम किया गया है वे ही उसकी संभाल रखते थे। पुराने आश्रमवासी भी धीरे-धीरे बदल चुके थे। नवीन जो आये उन्हें कभी नहीं बतलाया गया कि यहाँ उन्हें किस लिये बुलाया गया है? क्या काम कैसे करना है? न कभी पूछा जाता कि आप क्या कर रहे हैं? आश्रमवासी अपने-अपने रंग में मस्त रहते। बाबा सिर्फ एक दो व्यक्तियों से ही बात करते, वह उस लड़की के विकास के सम्बन्ध में नहीं। आश्रम की लड़की को प्रथम बाबा सँभाल सँभाल कर रखते थे। उसको कहीं कुछ हो न जाये इसी की उन्हें फिक्र थी। अब वही लड़की अकेली इधर-उधर घूमती फिरती। जहाँ उसका मन आता बैठती। थकने पर जहाँ कहीं सो जाती। उसको कोई कुछ नहीं पूछता सिवा उनके, जो यह जानते थे कि हमारा अस्तित्व इस लड़की के लिये है। परन्तु इसमें भी इन बाबा का दबाव नहीं था। आश्रम की सफाई, बगीचे की देखभाल और अन्य कार्यकर्ताओं के काम में मदद देने वाले भृत्य वर्ग धीरे

धीरे कहीं अन्यत्र काम पर लगा दिये गये । केवल वेतन के गुजारे के दिन ही वे आश्रम में नजर आते ।

पहले बाबा लोगों को आश्रम के कार्यक्रम और व्यवस्था में सुधार के लिए आमंत्रित करते थे । लोग कुछ ऐसे आदी हो गये थे कि उन्हें यहाँ आये बिना सुहाता नही था । अब वे खुद ही आना तय करते आश्रम में आते । वे अपने ही स्तर पर चर्चाओं का श्रीगणेश करते । आश्रम के सुधार और कन्या के विकास क्रम की बातें भी करते । परन्तु बाबा इसमें अपनी ओर से कुछ नही बोलते । कभी कभी इन चर्चाओं के बीच में से उठकर चल देते और फिर लौटते ही नही । कभी कभी तो वे ऐसी चर्चाओं में शुरू से आखिर तक किसी भी समय दर्शन नहीं देते । आश्रम के पुराने कार्यकर्त्ता जो लड़की के विश्ववासपात्र थे-काना-फूसी में कहते कि कहीं बाबा का झुकाव विरोधी तत्त्वों की ओर तो नही है ? यों ही दो वर्ष बीत गये । बाबा के सन्यास का समय आ गया । एक दिन सभी आश्रमवासी इकट्ठे हुए । बाबा की विदाई का कार्यक्रम रचा गया । वे भी संन्यासी बनकर वन को रवाना हो गये ।

: 3 :

कुछ समय तक आश्रम फिर से बिना बाबा के चला । लड़की की खबर-गीरी का रिवाज उठ चुका था । आश्रमवासी अपने-अपने रंग में मस्त थे । तभी खबर आई कि आश्रम संचालक मंडल ने निर्णय ले लिया है । जिन बाबा के लिये निर्णय लिया गया है वे आ रहे हैं । दूसरे ही दिन बाबा आश्रम में आ पहुँचे । कार्य भार सभाल लिया । निश्चित आसन पर विराज गये । सब आश्रम-वासियों को बुला भेजा । बाबा की कुटिया में सभी एकत्रित हो गये । प्रत्येक से परिचय लिया । जिन जिन से पुराना परिचय था उनमें पुरानी यादों के आधार पर निकटता स्वीकार की । आश्रम के कार्यक्रम की जानकारी प्राप्त की । इसकी सार्थकता बढाने के लिये लोगों के विचार मालूम किये । वह लड़की जिसके लिये यह आश्रम स्थापित किया गया था उससे सम्पर्क साधा ।

आश्रम के कार्यक्रम में हलचल आने लगी । क्रमश: सब कार्यकर्त्ताओं को बाबा पहचानने लगे । उनके कार्य से अवगत हुए । आश्रम की व्यवस्था में उनके योग और महत्त्व को समझा । प्रत्येक को यह आभास होने लगा कि यह आश्रम एक बार फिर अपने अस्तित्व के उद्देश्यों की दृष्टि से सजग

हो रहा है। आश्रम के ऐसे कार्यकर्त्ता जो पहले यह समझते थे कि काम किस लिये करें, वे भी सजग होने लगे।

बाबा छोटे से बड़े तक सब प्रकार के कामों को देखते। साथियों के आसन पर जाकर भी समस्याएँ पूछते और विचार करते। यह भी ध्यान में रखते कि प्रत्येक कार्यकर्त्ता और उसके कार्य एवं आश्रम के कार्यक्रम से लड़की के विकास में किस सीमा तक मदद मिल रही है। आश्रम संचालक मंडल जिसमें यह भावना पैदा हो गई थी कि आश्रम अपने कर्त्तव्यों की दृष्टि से कमजोर हो गया है उसके विचारों में भी परिवर्तन आये, इस हेतु बाबा भरपूर कोशिश करने लगे। कुछेक अवसरों पर बाबा ने आश्रम में ऐसे काम कर दिखाये जिससे सभी को यह लगा कि यही बाबा और इनके साथी ही इन्हें थो इतने कम समय और साधनों से पूरा कर सकते। एक बार फिर आश्रम का समाज में आदर बढ़ा। आश्रम में लोगों को आमन्त्रित किया जाता। बाबा उनकी उपस्थिति का पूरा पूरा लाभ उठाते। अपने विचारों से आगन्तुकों को प्रभावित करते। आश्रमवासियों का हौसला बढ़ाते। वह लड़की जो पहले अकेली इधर-उधर घूमती फिरती थी और जिसकी सँभाल समाप्त सी हो गई थी, एक बार फिर उस आश्रम का केन्द्र बनी। बाबा शौकीन थे। उन्होंने उस लड़की को नहलाने धुलाने की, आराम की, सुख और आनंद की पूरी-पूरी व्यवस्था की।

अब वह लड़की लिपस्टिक लगाती। आँखों को भीमसेनी काजल से सुन्दर बनाती। चेहरे पर पाउडर का प्रयोग करती। नयी-नयी पोशाकें पहनती, उसके साज सामान को व्यवस्थित रखने के लिए इंतजाम किया गया। उसे गर्मी के कष्ट से बचाने के लिए कूलर लगाये गये। उसके रहने का स्थान एक बार फिर से रंगीन नजर आने लगा। बाबा कभी-कभी कह बैठते—'मैं यहाँ थोड़े समय ही रह पाऊँगा अन्यथा इस आश्रम को चमन कर देता।' सारा आश्रम एक बार फिर आकर्षक बन गया। आश्रम के महत्त्व को समझने वाले आश्रमवासी जो पूर्व बाबा की इस आश्रम के प्रति आस्था पर संशय कर निराशाह की अवस्था में काम किया करते थे उनमें नवीन उत्साह का संचार हुआ। जो आलसी हो गये थे उन्होंने भी महसूस किया कि यों गुजारा नहीं चलेगा। आश्रम में एक बार फिर चहल-पहल नजर आने लगी। काम वाले लोगों का आश्रम में तांता बँधा रहता। अलग अलग तरह

के लोग भी फुर्सत के समय आश्रम की ओर आते और प्रेरणा प्रा
वापस लौटते। लड़की अब सात वर्ष की हो गई थी। उसको अप
होने लगा था। उसके पास अपने लिए आवश्यक साधन और सौन्दर्य
सभी उपलब्ध थे।

तीसरे बाबा का कार्यकाल बहुत थोड़ा रहा। उनके भी
बनने का समय आ गया। कोई नहीं चाहता था कि ये बाबा जावें। पर
संन्यास का समय आ गया तो बाबा को जाना ही था। विदाई
आयोजित हुआ। तीसरे बाबा भी विदा हो गये। एक बार फिर इस
में सूनासूना-सा लगने लगा। आश्रमवासी जब कभी आपस में बैठ कर बातें
तो यह बात जरूर होती—"चौथे बाबा कौन होंगे? चौथे बाबा कब आयें

: ४ :

आखिर एक दिन खबर आई कि आश्रम के चौथे बाबा कौन हों
तय हो गया है। बाद में किसी अन्य सूत्र से मालूम हुआ कि चौथे
अमुक दिन इस आश्रम का भार सँभालेंगे। आखिर वह दिन आ गया।
बाबा का आश्रम में पदार्पण हुआ। आश्रमवासियों ने इनका
किया। बाबा अपने पूर्व निश्चित स्थान पर पहुँचे। आसन ग्रहण कि
कार्यभार सँभाल लिया।

अब तक के इस आश्रम के पूर्व तीनों बाबाओं की तुलना में
बाबा की आयु सबसे ज्यादा थी। परन्तु इस आयु में भी इन बाब
चपलता अपने आप में इनकी एक विशेषता थी। आश्रम के लोगों से
बाबा बात करने लगे शुरू के दिनों में हमेशा यही कहते— "आश्रम
[illegible] ने कहा है, बस आप तो हमने यहाँ भेज दिया है आश्रम की
समस्याओं को आप सुलझा लेंगे। आश्रम की स्थापना का उद्देश्य
कार्यकाल में निश्चित ही पूर्ण होगा।" फिर बाबा अपने साथियों की
कहानी सुनाते। किस प्रकार उन्होंने एक आश्रम में [illegible]
काम किया था। किस प्रकार समाचार पत्रों ने उस समय उनकी [illegible]
[illegible] "[illegible]" कर दिये थे। किस प्रकार उस आश्रम का [illegible]
[illegible] इनसे प्रसन्न था। किस किस प्रकार से [illegible] [illegible]
[illegible] से उनकी प्रशंसा किया करता था।

[illegible] के इन [illegible] को आश्रम के [illegible] सुनते। बाबा
[illegible] को अब कभी भी किसी एक से [illegible] से [illegible] सुनते। [illegible]
[illegible] को सुनने का काम [illegible] ने बड़ी [illegible] के साथ [illegible]

बाबा की अपनी कारगुजारियों की कथा अविरल रूप से चलती रही। क्रमशः कुछ लोग इन बातों से थकने लगे। खास तौर से वे लोग जो आश्रम की सुव्यवस्था और इसके उद्देश्यों की प्राप्ति में रुचि रखते थे। धीरे-धीरे बाबा ने अपनी आत्मकथा सुनाने की दृष्टि से श्रोता वर्ग का केन्द्र स्थल बदलना शुरू किया। अब आश्रम के प्रमुख कार्यकर्त्ताओं की बजाय आश्रम व्यवस्था का लेखा-जोखा रखने वाले लोगों, लिपिक वर्ग और भृत्यवर्ग को बाबा ने अपनी कहानियाँ सुनाना शुरू किया। ये बाबा की कहानियाँ बड़ी रुचि के साथ सुनते। बड़ी उत्कंठा के साथ सुनते। धीरे-धीरे इनका काम बाबा की कहानियाँ सुनना ही रह गया। बाबा जब अपनी कहानियाँ सुनाना शुरू करते तो वे खुद ही आनन्द विभोर हो जाते। श्रोताओं को लगने लगा कि बस यही हमारा काम है।

आश्रम में बाबा के प्रमुख सहायक जब आश्रम के कार्यक्रम सम्बन्धी पत्र कार्रवाई के लिए कार्यालय के कर्मचारियों को देते तो शुरू में वे बेमन से इन्हें स्वीकार करते। धीरे-धीरे उन्होंने आश्रम के प्रमुख सहायकों को बुराभला कहना शुरू किया। बाद में यह स्थिति पैदा हुई कि इनका सबका काम बाबा के इर्दगिर्द घूमते रहने के अलावा कुछ न रहा। आश्रम का लेखक वर्ग, और भृत्यवर्ग अपने स्थान पर नहीं मिलते। आश्रम का ऐसा कार्य जो इनके द्वारा ही होने का था रुक जाता। कार्यालय का कार्य ठप्प पड़ने लगा। क्रमशः प्रमुख कार्यकर्त्ताओं में से कोई जब सेवकों को आश्रम सम्बन्धी पत्र कार्रवाई हेतु देते तो वे उन्हें लौटा देते ? कभी-कभी कोई उन पत्रों को फेंक देता। अब वे यह मानते थे कि यह काम हमारा नहीं है। प्रमुख सहायकों के पारिश्रमिक के भुगतान में भी उन्हें क्रमशः कोई मतलब न रहा।

बाबा के सामने जब यह बात लाई जाती तो बाबा बात को सुनने के पूर्व ही कह देते—"ये लोग बड़े बदमाश हैं। मैं सब कुछ जानता हूँ।" कभी कोई सम्बन्धित लेखक या भृत्य को अपनी कठिनाई की दृष्टि से बाबा के सामने प्रस्तुत करता तो बाबा उससे वह बात करते ही नहीं और दूसरा कोई काम बतलाकर रवाना कर देते। अगर कोई वह कार्यकर्त्ता बाबा से पूछता—"आपने तो उसे कुछ भी नहीं कहा ?" बाबा कहते—"बड़े बदमाश हैं ये लोग मैं खुद इनसे परेशान हूँ। क्या कहूँ, समझ में नहीं आता।"

बाबा के सामने आश्रम की बड़ी से बड़ी समस्या रखी जाती तो उसे

कहना शुरू करते ही वे कह देते कि "मैं समझ गया।" फिर भी अगर कोई कहता कि मुझे बात कहने दीजिये—तो बाबा बीच में ही अपनी कहानी शुरू कर देते। बाबा की कहानी समाप्त होने पर जब समस्या पर चर्चा शुरू होती तो बाबा कोई दूसरी बात शुरू कर देते। इस प्रकार बाबा के सामने बड़ी से बड़ी समस्या को प्रस्तुत करना भी एक असंभव काम बन गया था। छोटी समस्याओं को प्रस्तुत करने का तो कोई प्रश्न ही नहीं था।

क्रमश: आश्रम दो वर्गों में बट गया। एक वह वर्ग जिसने यह पसंद किया कि बाबा की खुशी ही अपनी खुशी है। दूसरा वह वर्ग जिसे आश्रम के उद्देश्य से लगाव था और जो यह मानता था कि बाबा और हम सभी का यहाँ पर अस्तित्व उन उद्देश्यों के लिए है जिनकी प्राप्ति के लिए सात वर्ष पूर्व यह आश्रम स्थापित हुआ था। ये लोग शंका की दृष्टि से देखे जाते। प्रथम वर्ग के लोग दूसरे वर्ग के लोगों को फूटी आँखों भी देखना पसंद नहीं करते।

बाहर के लोग कभी कहते कि हम आश्रम को देखने आ रहे हैं तो बाबा कहला देते मैं स्वयं बाहर जा रहा हूँ। आश्रम में बिना सूचना दिए ही कुछ लोग अगर चले आते तो बाबा उन्हें अपनी कहानी सुनाने लगते। इस आश्रम की पूर्व परम्परा जिसके आधार पर आगन्तुक और आश्रमवासी सभी साथ-साथ बैठ कर आश्रम के कार्य में गति लाने और लड़कों के विकास में अधिकाधिक सहायक होने की चर्चाएँ करते थे, बाबा को बिलकुल पसंद नहीं थी। अगर संचालक मंडल कभी बाबा से यह आग्रह करता कि अमुक समस्या पर आश्रम के प्रमुख कार्यकर्त्ताओं की राय ली जा कर निराकरण भेजे जावें तो बाबा ऐसे पत्रों के उत्तर महीनों तक नहीं भेजते। जब कई बार उन्हें याद दिलाई जाती तो बाबा कहते—"इसमें क्या है ? आप लोग बैठकर बात कर लीजिये।' अगर ऐसी कार्रवाईयों के पश्चात् बाबा को प्रतिवेदन प्रस्तुत किए जाते तो बाबा उनमें कोई रुचि नहीं दिखाते।

यह क्रम कई महीनों तक चलता रहा। बाबा को उनके निकट के लोगों ने अच्छी तरह से समझा और परखा था। वे अब आश्रम के कार्य से पूरी तरह मुक्त थे। बाबा की तारीफ करते हुए वे अघाते न थे। उनकी दृष्टि में बाबा अब तक इस पद पर आये व्यक्तियों में सर्वश्रेष्ठ थे। परन्तु जो दूर से बाबा के हावभाव और व्यवहार को देख रहे थे वे कहते—"इन बाबा को समझना टेढ़ी खीर है।"

बाबा को समझना वास्तव में टेढ़ी खीर था। बाबा अपने आसन पर जब बैठते तो एक ही मिनिट में कई मुद्रा बदल लेते। जब बात करते तो एक में असख्य बातें शामिल कर लेते और उनमें एक भी बात पूरी नहीं करते। पूर्वाह्न में काम करते हुए बाबा अपने साथियों से कहते "इस काम को अपराह्न में करेंगे।" अपराह्न में विस्मय के साथ पता लगता कि बाबा आश्रम से बाहर यात्रार्थ निकल गये हैं। वे आश्रम के कार्य से बाहर जाते, परन्तु किसी को पता नहीं लगता कि किस काम से बाहर गये है। कहाँ-कहाँ गये थे। कितना-कितना काम करके लौटे है। बाबा में चपलता इस सीमा की और इतनी अधिक थी कि किसी एक काम, या एक जगह, पर बाबा टिक ही नहीं सकते।

आश्रम के इस प्रकार के वातावरण में एक दिन यह पता लगा कि वह लड़की जिसके लिये यह आश्रम स्थापित हुआ था वह कई दिन से आश्रम में नजर नहीं आ रही है। आश्रमवासियों में खलबली मच गई।

बाबा की दृष्टि में यह बात लाई गई। बाबा ने तत्काल उत्तर दिया—"ऐसी कौन-सी नई बात है? अब वह बड़ी हो गई, जायेगी नहीं तो क्या यहीं बैठी रहेगी।"

बाबा के इन शब्दों से कतिपय पुराने एव प्रमुख कार्यकर्त्ता जो इस आश्रम की स्थापना के उद्देश्य से अवगत थे, स्तब्ध रह गये। उन्होंने समझा शायद बाबा स्वय भी नहीं चाहते कि समाज पर आश्रम की उस लड़की का एक छत्र शासन स्थापित हो और यह आश्रम इसी उद्देश्य के लिए कार्य करता रहे।

आश्रम अब भी चल रहा था। पुराने कार्यकर्त्ता कभी अपने आप से पूछते—ये आश्रम अब किस लिए चल रहा है? हम अब यहाँ क्यों बैठे है?

· 5

सन्यासियों की एक जमात एक दिन आश्रम की ओर से गुजरी। उनमें से एक बाबा अलग निकल कर उस आश्रम की ओर आया। आश्रम के अन्दर घुसा। दरवाजे पर किसी ने उससे कुछ न पूछा। वह उत्कंठित दृष्टि से देखता हुआ एक-एक कुटी, और एक एक कुञ्ज में चक्कर लगा गया। अन्त में उस स्थान पर पहुँचा जहाँ वह लड़की रहा करती थी। सारी जगह वीरान सी नजर आ रही थी। बाबा ने अन्तर्दृष्टि से देखा कि लड़की के वश में उस लड़की के स्वच्छन्द, प्रकृति और वायु सभी इन्द्रियों ने विपरीत एक बूढ़ा बैठी

हुई खर्राटे ले रही है। संन्यासी बाबा को हैरानी हुई। उसने एक बार फिर इस उद्देश्य से कि यहीं वह लड़की भी उसे दृष्टिगोचर हो जाये, एक बार फिर सारे आश्रम का चक्कर काट डाला। परन्तु व्यर्थ।

बाबा ने आश्रम के एक मुख्य सदस्य से पूछा वह लड़की कहाँ गई। उसने उत्तर दिया "वह तो यहाँ से कभी की चली गई। बाबा को जब मालूम पड़ा था तो उन्होंने यही कहा था—बड़ी हो गई जायेगी नहीं तो क्या यहीं बैठी रहेगी।"

बाबा आश्रम से बाहर निकला। उसने अपनी झोली से कागज एक पुर्जा निकाला। उस पर कुछ लिखा और आश्रम के सामने के ताल में प्रवाहित कर दिया।

इस कार्य को आश्रम के पुराने कार्यकर्ताओं में एक ने दूर से देखा। वह दौड़ा-दौड़ा बाबा के पास पहुँचा। बाबा को वह पहचान न सका, परन्तु पूछा "बाबा! आपने यह क्या किया।" बाबा ने उत्तर दिया "वही जो करना चाहिए था।" इस उत्तर पर वह पहचान गया कि ये आश्रम के पहले बाबा हैं। उसने पूछा "उस कागज के पुर्जे में क्या था?" बाबा ने कहा "क्यों पूछते हो, जो होना चाहिये था वही था।" परन्तु वह न माना और बतलाने के लिए बार-बार आग्रह किया। बाबा ने शान्त उत्तर दिया "न पूछना ही अच्छा था। परन्तु नहीं मानते हो तो सुनो—वह एक कागज का पुर्जा था। उस पर मैंने उस लड़की का नाम—'उद्देश्यनिष्ठा' लिख कर जल नारायण को समर्पित कर दिया। परन्तु विश्वास रखो 'उद्देश्यनिष्ठा' डूबेगी नहीं, वह, निश्चित ही एक दिन किनारे लग कर रहेगी।"

बाबा का गला रुँध गया। आगे कुछ न कह सके। वे तेज़ी से आगे बढ़े और अपनी जमात में शामिल हो गये।

18

खामोश क्षण

मोड़सिंह 'मृगेन्द्र'

• • •

एक साँझ ...। समातुर घड़ी व भयावह निशा...। मैं बढ़ रहा था आगे। सोचता हुआ कि चित्रा क्या कर रही होगी...।

आँसुओं की माला पहने...निराश आवरण ओढ़े.........लुढ़की सी... खामोश क्षणों को पार कर रही होगी। इसके सिवा उसके पास रहा ही क्या है? गमगीन व बेबस रातें...उसका दिल बहला रही होंगी...। पलकों की हताश निगाहें उठती ही न होंगी हरदम वह घुट कर रह गई है। हर बहार ने उसके जीवन में खुशी के बदले टीस सी भरी है। उसकी जिन्दगी शून्य है। बेसहारा व विस्मित हलचलों में सदीप्त। तूफानों से कुचला कर रह गया है उसका जीवन।

चित्रा वह चित्र थी जो सदा हँसता रहा था, मुस्कराता रहा था। अब वह न हँसती है न ही ज्यादा बोलती है। चिड़चिड़ा सा हो गया है उसका

इस दुनियाँ में नहीं रहा ""।' और एक दिन उसकी माँ ने उस यौवनांगना के आभूषण उससे पृथक् किये तो चित्रा सहम उठी " 'माँ'" यह क्या कर रही हो" ?'

'बेटी "अब""ये तेरे न रहे। तेरा सुहाग लुट गया है। अब तू वि " ।' 'माँ""'और वह इतना ही कहकर रह गयी थी। बेटी चित्रा के लुटे सुहाग से माँ अपने आपको खो बैठी""। कुछ दिनोपरान्त वह मृत्यु का शिकार हो गई। इसलिए ही तो चित्रा के शयनगृह में दीप नहीं जला। वह न हँस सकती न घूम सकती " न वही बाहर झाँक सकती है। निगाह उठा कर ससार नहीं देख सकती""। वह शृंगार नहीं कर सकती "" आभूषण नहीं पहन सकती""माँग नहीं भर सकती""।

उसका भेष, उसका हुलिया तो वही घिसा-पिटा है और उम्र भर वही रहेगा। खाली हाथ, निराश चेहरा " नम आखें, कमजोर दिल, झुकी पलकें"", बिखरा जूडा, सुहाग रहित माग, उलझा मन और खामोश क्षण"" ये ही उसकी जिन्दगी के पात्र हैं। सुनसान व शान्त कमरा अन्धकार से लिपापुता,"" निस्तब्ध वातावरण, सगीन दीवारें, कठोर बन्धन और इन्ही में बँधी तड़फ-तड़फ कर प्राण देगी। आजन्म वैधव्य में रहेगी। उसे बाहर देखने का अधिकार नही।

'मगर क्यों ?'

'क्या गुनाह किया है उसने ?'

'क्या अपने स्वामी को स्वय उसी ने मारा है ?' क्या चित्रा ने खुद ही उसे चुना था ? मगर वह कुछ भी तो नहीं जानती। फिर उसका दोष"" जिसकी सजा वह इस तरह पा रही है !

'उसकी किस्मत " यही न !'

नही । रूढ़िता व सामाजिक बन्धन ही उसकी किस्मत है। इन्ही बन्धनों ने उसका जीवन निस्सार कर दिया है। इन्हें हटा लिया जाय तो मुकद्दर चमक सकता है। मगर चित्रा का बाप कट्टर है। चित्रा का गाँव कुछ दूर रह गया है। चित्रा से मेरा लगाव है। मैं स्वय विवाहित हूँ। पर हूँ विधुर"" । ठीक चित्रा सी मेरी भी कहानी है। यह बाल-विवाह का परिणाम है। मैं चित्रा का जीवन चाहता हूँ। चित्रा जो भूल कर बैठी है, मैं सुधारना चाहता हूँ। समाज का मुकाबला करके "उसके पिता की भूल मिटा करके ।

मेरेपिता ने मेरा सम्बन्ध अन्य जगह कर दिया है। वे नई शादी चाहते हैं। वह योवना मोहिनी है। मगर सोचता हूँ मोहिनी कँवारी है उसके लिए वर बहुत है। मगर चित्रा का कोई नहीं है। इसीलिए मैं भाग आया हूँ। पिताजी को इन्कार कर दिया है कि मोहिनी को मैं नहीं अपना सकता। 'चित्रा……ओ चित्रा।' खामोश दरवाजे से टकराकर मेरी आवाज लौट आई। मगर दूसरे ही क्षण दरवाजा खुला………एक भयभीत आवाज उभरी।

'कौन…… ?'

'मैं हूँ चंचल।'

'रामगढ़ी वाला चंचल ! आइये चंचल बाबू। इतनी रात गये।'

"हाँ यूँ ही चला आया।"

'कौन आया है चित्रा बाई ?'

'चंचल बाबू……।' चित्रा ने कहा।

'ह ह आइये……बाबू……।;

'हाँ रामू दादा कैसी है तबियत।' मैं चित्रा के वृद्ध नौकर से बोला।

'बस, आपकी मेहर से ठीक हूँ।'

और मैं आगे बढ़ गया चित्रा के साथ-साथ। चित्रा ने मुझे अपने पास वाले कमरे में ठहराया। और दोनों कमरों के बाहर रामूदादा की चारपाई थी जहाँ वह सोया हुआ था। चित्रा भोजन लाई। मैंने देखा कि मेरे इस कमरे को छोड़ किसी कमरे में रोशनी नहीं थी। यहाँ भी हल्का सा दिया राम की प्रतिमा के आगे जल रहा था जिसमें तेल शायद अब तक समाप्त होने को था। पवन के झोंकों से वह काँप रहा था। और एक झोंके से वह मिट भी गया।

'चित्रा, अन्धेरा है, दिया फिर जलाओ।'

'चंचल……।' और इतना कह फिर न जाने क्यों बाहर हो गई ? जेब से दियासलाई निकाल कर दीप जलाया। चित्रा लौट आई थी। मैं भोजन करने लग गया। 'चित्रा तुम बाहर क्यों खड़ी हो ………।'

'चंचल मैं रोशनी से डरती हूँ। मैं रोशनी नहीं चाहती। मेरे जीवन में अन्धकार है और मैं इसे महत्व देती हूँ। दिन में सदैव कमरा बन्द रहता है और उसमें मैं स्वयं।'

'मगर यह सब करने से क्या होगा ··· ' मैं खाना तभी खाऊँगा जब तुम···मेरे नजदीक होगी। मैं तुम्हें अन्धकार से रोशनी में लाने के लिए ही तो यहाँ आया हूँ।' मेरे प्रति आग्रह पर वह भीतर आई। मेरी आँखों में अश्क उतर आए' उसके भीतर आते ही दीप पवन के झोंके से छिप गया था।

'चंचल········ मैं मैं ·· ।'

'चित्रा····बुजदिल मत बनो····। जिन्दगी से दूर मत भागो।' वह आकुल हो उठी, उसको गिरने से मैंने बचा लिया था। दूसरे क्षण चित्रा चीख उठी···· 'चंचल भूख हो तो खालो नहीं तो सो जाओ।····' और वह बाहर जाने लगी। तो मैंने उसका हाथ पकड़ लिया।

'चित्रा········ ।'

'चंचल··· मैं विधवा हूँ। मैं वह सब भूल चुकी हूँ।' और उसके इन शब्दों से मुझे याद आया। इन पहाड़ियों की घाटियों में इसी तरह एक दिन हाथ पकड़ा था तो चित्रा मुस्करा कर कह उठी थी 'मैं विवाहित हूँ छोड़ दो मेरा हाथ।' और मेरे होश हवा हो गये थे। जिसे मैं अपनी जिन्दगी से बाँधना चाहता था, वह तो किसी की बन चुकी है। और मैंने पिताजी से कहा था तो उन्होंने भी यही बात कही थी। 'बेटा····उसकी तो शादी हो चुकी है।' मैं टूक-टूक होकर रह गया था।

'चित्रा अब तुम विवाहित नहीं हो।'

'मगर विधवा हूँ।'

'विधवा होना गुनाह नहीं है।

'नहीं ···नहीं ! मैं कुछ भी सुनना नहीं चाहती। मुझे इन रातों से प्रेम हो गया है जो गमगीन हैं, सगीन हैं, बेदर्द हैं, सुनसान व नीरव हैं। ये खामोश क्षण ही मेरा जीवन है। चंचल मैं सुबह नहीं देख सकी तो कोई रंज नहीं।' और बोलती रही 'देखो चंचल····पिताजी प्रातः जल्दी ही लौट आयेंगे। जब से माँ ने जग छोड़ा है वे बाहर नहीं रहते।'

प्रातः रामूदादा ने दरवाजा खोला। चित्रा के पिता अन्दर आए। एक क्षण सहज कर खड़े हो गये।

'क्या बात है रामू···· ? ऊपर कौन है ?'

'शाम को चंचल बाबू आए हैं।'

'ऊपर ही हैं ।'

'हाँ............ ।'

और विक्रमसिंह बेआवाज कदमों से ऊपर को बढ़े। फिर झिझक कर खड़े रह गये।

'चंचल, पिताजी रूढ़िवादी हैं। वे विधवा-विवाह के प्रतिकूल हैं।'

'विभा, समय बदल चुका है हमें भी बदलना चाहिए।'

'मगर पिताजी ....।'

'मैं उनको समझा दूँगा। जो औरत यौवना है, जिसने सुबह नहीं देखी, जिन्दगी का रहस्य ही न जाना, जो कूड़ा बनकर जी रही है। एक जानवर से गयी-बीती जिन्दगी.........। इस खामोश क्षणों में तुम पर क्या गुजर रही है? तुम्हारे पिताजी नहीं जानते। तुम कैसे जिन्दा हो? तुम कितने आँसुओं से सदा आँखें धोती हो? तुम हँस नहीं सकती... । क्या यह सब नहीं है?'

विक्रमसिंह का सिर चकरा गया। सच है सब सच है। मगर...वे सुनते रहे।

'तुम्हारा कमरा अन्धकार में क्यों डूबा हुआ है? शायद तुम्हारे पिता ने नहीं सोचा। वे धन से जीवन सुखी बनाना चाहते हैं तो यह सर्वथा गलत है। शायद तुम्हारी माँ की रिक्तता में उन्हें भी मालूम हो गया होगा कि अकेलापन कितना बुरा है, भयावह है, फिर वृद्धावस्था और युवावस्था में तो बहुत अन्तर है। मैं भुक्तभोगी हूँ विभा।' विक्रमसिंह को पसीना हो आया। उनका बदन टूट कर रह गया। जी में आया चंचल का गला घोंट दें...लेकिन...वह तो सभी सच कह रहा है 'चंचल तुम कितने महान हो। मेरी आँखें खोल दीं। वास्तव में...हाँ मैं गलती पर था।' एक विचार उनके दिमाग में उठा।

[illegible]...शाम, अन्धकार...अकेलापन... यौवनांगना विभा और [illegible] के साथ उनकी आँखों में विभा का जीवन व [illegible] [illegible]।

'मैं समझता चंचल... समझता हूँ।'

मैं हक्का-बक्का सा रह गया। वे मुस्कराते हुए अन्दर आए। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] थी। वे [illegible] [illegible]।

[illegible]

'चचल और चित्रा तुम भी '' ''''इधर आओ।'

हम उनके साथ बाहर आए तो वे बोले—

'चित्रा वो देखो '''इस अन्धकार की रात के बाद वह सुबह आ गई है। ईश्वर करे अब तुम्हारे जीवन में ऐसी रातें न आए। मैं खुश हूं चित्रा बहुत खुश '। चचल तुम्हारा चिराग है। रोशनी है। सुबह है।'

वे पलक मूंदे पूर्व की तरफ मुंह किए बोले जा रहे थे।

'चचल '' चित्रा तुम्हारे साथ है। तुम्हारा जीवन है। तुम मेरे लाड़ले हो चचल''''। मेरे घर तुम्हीं मालिक हो।'

'चित्रा जाओ, अपनी मांग भर लो''''हँसलो चित्रा हँसलो।'

मगर चित्रा वहां न थी। हम नीचे उतर आए। चित्रा अपने कमरे की खिड़कियां खोलने में व्यस्त थी।

'चित्रा ''''''।'

वह धीरे-धीरे मेरे पास आई ? कदमों में झुकने लगी कि मैंने उसे बाहों में भर लिया।

आज भी जब शाम को चित्रा दिया जलाती है तो एक कहकहा-सा लगाती है ''''''कैसे थे वे खामोश क्षण '''''"

'जो खामोश न रह पाए '''।" मैं कह उठता हूं और हम मुस्करा उठते हैं।

जब तक कालेज में पढ़ा, उसने किसी प्राध्यापक की डाँट नहीं बर्दास्त की। कक्षा में वह सदा मुँहफट रहा था, इसलिये साथ के छात्र उसे 'हीरो' कहने लगे थे। उसके मस्तिष्क पर इस शब्द का ऐसा असर हुआ कि वह नेतागिरी की ओर बढ़ने लगा। उसने महाविद्यालय का हर सभव चुनाव लड़ा और विजय भी पाई। वह बड़े गर्व से कहा करता था कि "कालेज की हड़ताल करवाने में उसने विगत सभी वर्षों के रिकार्ड तोड़ डाले हैं।" ऐसी कोई कक्षा महाविद्यालय में न थी जिसे वह दो वर्ष में भी लाँघ पाया हो। इस जिन्दगी का वह अभ्यस्त हो चुका था। उसने कितनी ही बार इस विषय पर भी सोचा था लेकिन हर बार उसे यही लगा था कि "अपने रास्ते पर वह इतना आगे बढ़ चुका है, कि जहाँ से फिर धाना असम्भव है, फिर जब तक तोड़-फोड़ और हड़ताल की कार्यवाही न हो, बड़े लोगों पर असर नहीं पड़ता; किशोरों और नवयुवकों के समाज में 'हीरो' का पद भी सुरक्षित नहीं रह सकता।" आखिर एक दिन वह भी आया जब ऐसी ही एक हड़ताल ने उसे कालिज से सदा के लिये निकलवा डाला। खाने-कमाने की चिन्ता उसको हुई और बहुत खोज करने के बाद एक दिन शहर की चीनी मिल में उसे क्लर्क की नौकरी मिल गई।

चीनी मिल में उसे कई वर्ष बीत गए हैं। क्लर्क तो वह नाममात्र को रहा है, असलियत में वह एक नेता रहा है, उन मजदूरों का जो उसके संकेत-मात्र पर आग में कूद सकते हैं।

फैक्ट्री पर पिछली बार की गई हड़ताल का उसे स्मरण है जब बोनस की माँग रख कर उसने मिल मालिक से समझौते के लिये बात तक करना अनुचित समझा था। मजदूरों ने उसके इशारे पर फैक्ट्री को आग लगा दी थी। लाठी चार्ज हुआ, गोली भी चली मगर फैक्ट्री जल गई। कुछ मजदूर मारे गए, कई घायल होकर अस्पताल पहुँचे और बहुतों पर मुकदमे चले किन्तु उसने काम इस सफाई से किया था कि वह स्वयं बचा रहा और संगठन को सम्हाले रहा। हड़ताल लगातार चलती रही। जिन्दाबाद, मुर्दा-बाद के नारे रह-रह कर गूँजते रहे। फैक्ट्री पर ताला पड गया। समय का छकड़ा लगातार घिसटता गया। परिस्थितियों ने कई करवटें ली, और कुछ समझौतों के पश्चात् फैक्ट्री फिर शुरू हो गई।

फैक्ट्री जैसे-तैसे छः माह चल पाई थी कि उसको लगा, "समय निष्क्रियता में निकल रहा है, हल-चल होनी चाहिये," और संघर्ष फिर चल

पड़ा। अनुभव उसका बहुत बढ़ चुका था इसलिये वह अब संघर्ष को चालू रखने के लिये कारण नहीं, बहाने खोजने लगा था। बहाने बनाने में उसको देर न लगती। पहले बोनस था, अब वेतन बढ़ाने की माँग रखी और साथ ही मजदूरों के स्थायीकरण की; माँग मंजूर न हुई और हड़ताल फिर शुरू हो गई।

× × × ×

संघर्ष समिति की गुप्त बैठक में वह आज पूरी योजना देकर आया था। फैक्ट्री को कल फिर आग लगादी जाएगी, यह प्रस्ताव संघर्ष समिति ने पारित कर दिया था। पेट्रोल की व्यवस्था की जा चुकी थी और अन्य दाहक सामान कैरोसिन आदि की भी। पुलिस से भी लोहा लेना पड़ेगा, वह जानता था इसलिये हथगोले और देशी बम भी उसकी संघर्ष समिति जुटाकर उचित आदमियों को वितरित कर चुकी थी।

घर पर वह थोड़ी देर को आया था, उसको यहाँ एक कार्यकर्ता की प्रतीक्षा करनी थी और उसके आने ही योजना के एक और चरण को पूरा करने के लिये चल देना था। पिछले तीन दिन में वह इतना व्यस्त रहा कि समाचार-पत्र तक न पढ़ पाया था। मेज पर पड़ा दैनिक उसने देखा ही उठा लिया। देश के हर भाग से तोड़-फोड़ के समाचार थे। कहीं मजदूरों ने रेल की पटरियाँ उखाड़ दी थीं। उसने फिर देखा, "टेसन की बड़ी फैक्ट्री में आग, कई लाख का नुकसान।"

"ये पूँजीपति इसी तरह ठिकाने लगेंगे!" वह प्रसन्न होकर बुदबुदाया। उसकी आँखों के आगे अपनी चीनी मिल की भूतपूर्व आग का दृश्य भविष्य में एकाकार होकर नाच गया। तोड़-फोड़, भाग-दौड़, लाठी, गोली, हवा फायर, धमाके, कोलाहल और अस्पताल। फिर भूखे मरते मजदूर और प्रशासन की रैलियाँ।

"बेकारी क्यों?" तब तक उसकी आँखें समाचार पत्र के इस मोटे शीर्षक पर जा टिकीं। पूरा लेख था लेकिन इतना छोटा कि जल्दी में भी पढ़ा जा सकता था। फिर इतने रोचक ढंग से लिखा गया था कि पढ़ने लगा तो वह उसी में रम गया।

लेखक ने बेकारी के कई कारण बताए थे। बेकारी का बहुत बड़ा दोष उसने हड़तालों पर रखा था। देशव्यापी स्तर पर हड़ताल और उनके

प्रत्यक्ष तथा दूरगामी प्रभावों की चर्चा की थी। विश्लेषण करते हुए एक-एक पहलू देखा गया था। लेखक ने लिखा था, "हड़तालों से उत्पादन में एकदम से कमी आती है और परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आय को ठेस पहुँचती है। राष्ट्रीय आय की क्षति से भुगतान नहीं हो पाते। बेकार तो आये दिन बढ़ते चले जाते हैं, करने के लिये काम भी बहुत है लेकिन काम लेने के बाद पारिश्रमिक कहाँ से दिया जाए? समस्या तो यह है।"

उसको लेखक की बात वजनदार लगी। लेख में केन्द्रित हुआ उसका मस्तिष्क अगली पंक्ति पर दौड़ गया। "देश के पिछड़ेपन का सबसे बड़ा कारण औद्योगिक संघर्ष है," उसमें लिखा था। कुछ आँकड़े आगे दिये हुए थे। "अमुक वर्ष में १३५७ औद्योगिक संघर्ष हुए जिनमें ५.१२ लाख व्यक्तियों ने भाग लिया और ४६.१६ लाख दिन जिन में कार्य होकर उत्पादन हो सकता था, एकदम बेकार गए। इसके बाद किसी वर्ष का लेखा था कि २५५६ संघर्ष हुए, १३८.४६ लाख दिन व्यर्थ गए। विगत किसी वर्ष के आँकड़े थे कि १७१.४६ लाख दिन व्यर्थ गए....।" इसके बाद के आँकड़े तो मानो देखने को ही नहीं बने थे क्योंकि उनको देखकर बड़ा भय लगता था।

उसने समाचार पत्र को एक झटके से फेंक दिया। सिर चक्कर खाने लगा था। उसने महसूस किया, जो आँकड़े इस लेख में दिये गए हैं, उनमें उसकी चीनी मिल भी गिनती बढ़ाने वाली रही है और देश को प्रगति में दुनिया से पिछड़ाने में उसका भी हाथ है। 'हड़ताल,' जिसके बिना उसको कभी चैन नहीं मिलता था, अब एक भूत की विकराल छाया सी दीखने लगी। लेखक ने हड़ताल को 'देश की पीठ में भोंका गया खंजर' कहा था। उसने लिखा था, "यह कीड़ा है जो देश के विकास की उठती फसल को चट कर रहा है। अधिकार बाधित होते हैं तो अदालतें क्या कम हैं, कि अपने हित की तत्काल पूर्ति के लिये उत्पादन रोक कर राष्ट्र की टाँग खींची जाय।"

"क्या मैं देशद्रोही हूँ?" वह स्वयं से प्रश्न कर उठा।

"नहीं" उसका स्वयं को उत्तर था। वह आवेश में आ गया, "मेरे हृदय में देश के प्रति अगाध श्रद्धा रही है, देश के लिये मैं हर समय मर सकता हूँ, बिना सोचे मिट सकता हूँ" सर्वस्व दे सकता हूँ। कितनाही आवारा मैं जीवन में रहा हूँ किन्तु रक्षाकोश के लिये मैंने लगन से पैसा जुटाया था" उसके मन में विचार कौंध गए।

"लेकिन इन लोगों से मैं किस तरह निपटूं" वह दूसरे ही क्षण सोच उठा, "क्या ये मोटे पेट वाले देशद्रोही नहीं जो अधिक से अधिक काम लेकर कम पैसा देने और उनका शोषण कर राष्ट्र को शक्तिहीन बनाते हैं ? जब तक राष्ट्र का एक भी नागरिक भूखा है तब तक पेट भर भोजन पाकर आराम की नींद सोने वाला क्या सुख से यहां रह सकता है ?" वह आवेश में बहता और चिन्तन में डूबता गया। "लेकिन" उसके मन में फिर प्रश्न उठा, उत्पादन "रोक कर हम राष्ट्र को कहां ले जाएंगे ?" उसके मानस में एक बार फिर से बर्बाद दिनों के आंकड़े अपनी पैशाचिक हँसी के साथ अट्टहास कर-कर गये। वह फिर गंभीर हो गया।

हवा का एक झोंका उसके कुर्ते को फड़फड़ा गया। उसे विचार आया, "जितना सामान मिल-मालिक का नष्ट हुआ, उतने का तो वह बीमा विभाग से पैसा ले लेगा। इसी तरह आगे भी होगा।

"आखिर आगजनी में नुकसान किसका होता है ?" उसने फिर स्वयं से प्रश्न किया और समाधान में खो गया।" मजदूर जो संघर्ष में मरे, वे छुट्टी पाये। घर बार उनके बिगड़े। घायल वे हुए ही। नौकरी जिनकी छूटी वे रोटी रोजी से वंचित हुए। उत्पादन रुका, राष्ट्र की प्रगति रुकी, अर्थ व्यवस्था चरमराई, बेकारी बढ़ती गई। अराजकता जो बढ़ी तो शत्रु देशों ने लाभ उठाया। मतलब यह की यहाँ भी चाकू देश को ही लगा। आखिर इस सब का दायित्व किस पर है ?"

उसकी चेतना अब विचारों के खोल में लिपट चली थी। अपनी गतिविधियाँ उसे एक टीले सी दिखाई दी जिसमें हर तरफ बाँबियाँ दीख रही थीं और बाँबी से कोई जहरीला नाग फन निकाल कर जीभ चमका रहा था। उसको लगा, वह स्वयं बहुत बड़ा अपराधी था। स्वयं को दोषी अनुभव करते हुए उसे अतर में जैसे किसी संतोष की अनुभूति मिल रही थी।

"टन" टन""टनन् टनन्" एका एक कॉलबेल बज उठी। उसने बाहर की ओर देखा। वही साथी, अहाते में प्रवेश कर रहा था जिसकी प्रतीक्षा में वह यहाँ बैठा था।

"आ गया हूँ" साथी उसे देखते ही चिल्ला पड़ा, "हमें जल्दी चल देना है" साथी उत्तेजित स्वर मे बोलता हुआ अंदर आ गया।

"कहाँ ?" उसने जानते हुए भी बौखला जाने के कारण हकलाते हुए

पूछा और ढेर सारा थूक जो मुँह मे भर आया था, एक साथ निगल गया ।

"हाँ" साथी का संक्षिप्त उत्तर था, "बहक क्यो रहे हो ?"

"नहीं" उसने साथी की आँखो में घूर कर कहा, "हड़ताल नही होगी" उसके स्वर मे अब दृढ़ता आ गई थी । गले की खरास एकदम मिट गई थी ।

"आखिर तुम्हे हो क्या गया है ?" साथी ने झुँझलाहट के स्वर मे प्रश्न किया । "कुछ नही, मैं ठीक हूँ" वह आत्म-विश्वास के साथ बोला ।

"गद्दार ! तुम सेठ से मिल गये हो । बड़ी रकम बनाकर मजदूरो से विश्वासघात कर गये हो ! मैं अब कहता हूँ । कल सब इस बात को कहेंगे ? एक बार फिर सोचलो' ! साथी आवेश मे आकर बोला ।

"सोच लिया है" उसने संयत आवाज मे कहा, "तुमने यह लेख पढ़ा है ?" कहते हुए उसने हाथ का अखबार साथी की ओर बढ़ा दिया ।

"नही पढ़ा, पर क्या अभी इसका समय है ?" साथी बोला ।

"अवश्य है, पहले बैठो, मैं तब तक चाय बनवाता हूँ" ।

"अरे नहीं !"

"हाँ" हाँ, बैठो, पढ़ो, मुझे तुमसे अभी बहुत बातें करनी हैं । कहता हुआ वह उठ खड़ा हुआ । साथी को उसने जबरदस्ती बिठा दिया । "लोग क्या कहेंगे ?" साथी ने बैठते हुए उस लेख पर अपनी आँखें जमाते हुए कहा ।

"कहेंगे सो कह लेंगे" उसने धीरे-धीरे अंदर की ओर कदम बढ़ाते हुए कहा," मेरे व्यक्तिगत सम्मान से राष्ट्र बहुत ऊपर है । हड़ताल बिना शर्त वापस ले लो, आग नहीं लगाई जाएगी, और कोई उपाय सोचो...." कहता हुआ वह किचिन की ओर पहुँच गया । साथी तब तक उसे अवाक् होकर देखता रहा । फिर उसके बतलाए मे रम गया । अब वह अंदर मे चाय लेकर लौट रहा था ।

"पढ़ा" उसने दूर से ही पूछा ।

"पढ़ तो लिया लेकिन" साथी बुझे हुए स्वर में बोला ।

"लेकिन क्या होता है ? यह तो अमलियत है" उसने उत्तर दिया ।

"हम बहुत आगे बढ़ चुके हैं अब वापस कैसे फिर सकते है ?"

"कुछ नहीं बिगड़ता है," उसने कहा, "हम कोई और रास्ता खोजें पर हड़ताल नहीं होगी, आग नहीं लगेगी। तुम पहुँच कर संघर्ष समिति की फिर बैठक करो, मैं भी आ रहा हूँ; बहुत जल्दी।"

साथी बोझिल पैर धरता हुआ अहाते से बाहर निकल गया था। उसकी नजर दूर जाते साथी की पीठ से फिसल कर अब अपने अहाते के कनीर पर आ गई थी। कनीर उसे पहली बार हँसता हुआ लगा था। बाहर कुछ दूरी पर खड़ा लाल-लाल गुलमोहर उसे खिलखिलाता हुआ लग रहा था। उसे लग रहा था खिलखिलाहट का कोई पुल कनीर से गुलमोहर तक तन गया है और उसके रोम-रोम में एक नई स्फूर्ति जाग गई है।

●●●

20

फिर बहार

सांवर दइया

* * *

आज से पहले कभी ऐसा नहीं हुआ। ....

पूरे घर मे उसके अस्तित्व की सार्थकता थी। बहुत गम्भीर न सही, लेकिन छोटी-छोटी समस्याएं सुलझाने के लिए उसकी सलाह ली जाती थी। उसकी अपनी आवश्यकताओं की जानकारी भी हासिल की जाती थी। उसकी सुविधा-असुविधा का ध्यान रखा जाता था।

लेकिन इन दिनों उसे लगने लगा कि वह अपने घर के लोगों के लिए अजनबी बन गया है। उसका लघु, मगर सार्थक अस्तित्व भी निरर्थक हो गया है। सुबह-शाम रोटी की थाली उसके आगे सरका दी जाती है—उपेक्षा से। उसे सिर्फ कुत्ता समझा जाता है जो दो वक्त रोटी के टुकड़े खाकर बाहर पड़ा रहे। उसने भरपेट खाया है या नहीं, इस बात की फिक्र किसी को नहीं रहती है। पहले तो माँ ही पूछ लिया करती थी—अरे, अभी से क्या ना-ना कर रहा है। ले, एक फुलका और ले। और वह जबर्दस्ती उसकी थाली मे गर्मागर्म फुलका रख दिया करती थी। फिर कटोरी मे दाल या सब्जी डाल दी जाती थी। भरपेट खा चुकने के बाद भी वह माँ का आग्रह

टाल नहीं सकता था। बिना कुछ सोचे गर्मा-गर्म चुसकी सी लेता। उसे डकारें आती रहती।

वह शाम को ऑफिस से लौटता तब बिना कहे ही उसे चाय मिल जाया करती थी। जिस दिन वह देर से आता, माँ का शिकायती स्वर सुनाई देता—ऑफिस से एक बार सीधा घर आ जाया कर। यहाँ तो चिन्ता करते-करते प्राण सूखने लगते हैं। और हाँ ऽ! आज तो तेरा इन्तजार करते-करते चाय ही ठण्डी हो गयी।

जिस दिन वह घर पर सूचना दिये बिना ऑफिस से सीधा पिक्चर में चला जाता और रात को साढ़े नौ बजे लौटता, उस दिन तो माँ की गालियाँ भी सुननी पड़ती—सौ बार कहा हुआ है कि घर पर कह कर जाया कर…… लेकिन सुनता ही नहीं। अब देख, खाना 'ठण्डा-टीप' हो गया है……। वह खाना खाकर बिस्तर में घुसता। उस समय पत्नी शिकायत करती—यह भी कोई ढँग है। कम से कम मुझे तो कह कर जाते……।

फिर उसकी पत्नी उससे लिपट जाती—फिर कभी इस तरह बिना-बताए देर से न आने का वह कर। वह कस कर उसे पकड़ लेता। उसके होंठों पर अपने होंठ रख देता। आँच पाकर संयम की मोम पिघलने लगती।

……लेकिन आजकल उसके देर से आने पर न तो माँ को चिन्ता होती है और न ही पत्नी को। माँ के साथ-साथ पत्नी भी उसे उपेक्षा से देखने लगी है। भाइयों की उपेक्षा तो वह शुरु से ही सहता आ रहा है। और पिताजी के साथ वह कभी घुल-मिल ही नहीं सका। पता नहीं क्यों, वह शुरु से ही उनसे दूर-दूर रहता आया है।

उसे लगता है कि इन दिनों पूरे घर में बर्फ की शिलाएँ जम गयी हैं। बर्फ की शिलाओं को वह नहीं तोड़ सकता।

× × ×

क्यों रे, तेरी भी तनख्वाह बढ़ी है, क्या? उस दिन माँ ने पूछा था।

ऊँ ऽ हूँ ऽ ऽ। उसने जूतों के फीते खोलते हुए कहा।

शिव की तनख्वाह तो बढ़ी है! तेरी क्यों नहीं बढ़ी? माँ ने कहा।

बड़े-भैया शिव रेल्वे में नौकर थे। इन दिनों केन्द्र सरकार ने अपने कर्मचारियों को अन्तिम-राहत दी थी। इस कारण उनको वेतन में पच्चीस रुपये अधिक मिलने लगे थे।

मैंने कहा—राजस्थान सरकार ने अभी अन्तिम-सहायता देने की घोषणा नहीं की है।

शिव कौन-सी विलायती सरकार की नौकरी करता है? अब माँ को समझाना मुश्किल था कि केन्द्र और राज्य के बजट अलग-अलग होते हैं, राज्य सरकारें केन्द्र सरकार की समानता नहीं कर सकती।

उनका सीधा सम्बन्ध दिल्ली से है! मैंने कहा।

तेरा कौन-सा विलायत से है? माँ ने फिर अपना राग अलापा।

रात को शिव ने ही माँ को आखिर समझाया। तब कहीं जाकर माँ को राहत मिली वरना वह तो यही समझे बैठी थी कि वह अन्तरिम सहायता की पूरी राशि डकार रहा है।

और फिर हड़ताल शुरु हो गयी।

उसने प्रदर्शनों में खुलकर भाग लिया। सरकार को गालियाँ दी। उसने झण्डे थामे। नारे लगाये।

सरकार के आदेश से गिरफ्तारियाँ होने लगी। लेकिन उसने प्रदर्शनों में भाग लेना नहीं छोड़ा। वह झण्डे थामता रहा। नारे लगाता रहा। माँ उसे समझाती कि इन दगों से दूर रहना, लेकिन वह नेता बनने के सपने देख रहा था। आखिर उसके भी 'सस्पेंशन आर्डर' हो गये। वह सस्पेन्ड होकर घर बैठ गया।

दो दिन तक उसने घर में किसी को भी नहीं बताया कि वह सस्पेन्ड हो गया है। तीसरे दिन भैया ने ही माँ से कहा। खबर सुनते ही पूरे घर में कोहराम मच गया। माँ ने चिल्ला-चिल्ला कर पूरा घर सिर पर उठा लिया। वह गालियाँ निकालने लगी—हरामी कुत्ते! तेरी अक्ल पर पत्थर पड गये थे क्या? अपनी माँ का नाम निकालने के लिए हड़ताल में शामिल हुआ था क्या? तेरे जैसे टुट-पुँजिये, जिन्हें मुँह धोने का भी शऊर नहीं है, क्या खाकर सरकार के खिलाफ झण्डे उठायेंगे? तनख्वाह बढाने का यह कोई तरीका है? अब लो, घर बैठे रहना। काम भी नहीं करना पड़ेगा और हजारों मिलेंगे!

उस दिन पूरे घर में यही बात चर्चा का विषय रही। सब उसी को कोस रहे थे।

वह अपने कमरे में जा रहा था। छत पर भाभी के पास पत्नी खड़ी थी। भाभी का स्वर उसके कानों से जा टकराया—तूने उनको समझाया

क्यों नहीं.......... उस तनख्वाह में खर्च जरा तंगी से चलता, लेकिन ऐसी मुसीबत तो नहीं आती.......... अब क्या होगा ?

वह मन ही मन भड़का—हुँह ! अब क्या होगा ? तुम्हारे बाप का सिर ! उस समय तो सारे घर वाले जान खाये जा रहे थे कि तेरी तनख्वाह क्यों नहीं बढ़ी। तेरा सम्बन्ध कौन-सा विलायत से है ! उसका तो किसी से कोई सम्बन्ध नहीं है क्योंकि उसकी नौकरी चली गई है। वह बुरी तरह से बेकार हो गया है।

वह कमरे में जाकर खाट पर लेट गया। वह स्थिर दृष्टि से छत को घूरने लगा। उसे लगा कि वह छत का बोझ सहन नहीं कर सकेगा। उसके जी में आया कि वह छत पर जाये और धड़ाम् से नीचे कूद पड़े। उसकी लाश देखकर घर वाले सिर पीट-पीट कर रोने लगेंगे। हुँह ! रोते रहें, स्साले ! उसे तो मुक्ति मिल जायेगी।

उसने सोचा और सोचकर रह गया। उसे उदासी घेरने लगी।

× × ×

उसे लगा कि वह सबसे कट गया है। नितान्त अकेला हो गया है।

वह अपने कमरे के दरवाजे बन्द रखता। घर के किसी सदस्य में यह साहस नहीं रहा कि उसके सामने आकर उसे कुछ कहे।

वह ख़ूँखार दीखने लगा। कई दिनों से दाढ़ी न बनाने के कारण और रात-रात भर जागते रहने के कारण उसकी आँखें लाल हो गयी थीं। वह किसी को घूर कर देखता तो हिंसक पशु-सा लगता।

पत्नी उसके कमरे में आती। चाय रखकर नीचे चली जाती। चुप-चाप। वह चाय पी लेता। उसका खाना भी ऊपर आता। उस दिन खाना लेकर माँ आयी। उसने कहा— किसन, तूने अपना यह क्या हाल कर रखा है ? इस तरह अपने आपको तकलीफ देने से क्या होगा ? कोई नयी नौकरी ढूँढ़ ले.......किसी से मिल-जुल.......आदमियों की तरह रह.......।

माँ की बात का उसने कोई उत्तर नहीं दिया। बस, मन ही मन उबल उठा—हाँ-हाँ, वह आदमी नहीं जानवर है...... सिर्फ जानवर !

माँ थाल रख कर नीचे चली गयी।

उसे जोर की भूख लगी थी। वह थाली की ओर लपका। तभी नीचे से पिताजी का स्वर उभरा—उस लाटसाहब की रोटी ऊपर देकर आयी हो....?

हो ऽ ऽ । (माँ का धीमा स्वर)

तुमने उसे बिगाड़ कर तीन कौड़ी का कर दिया है। अच्छी नौकरी थी, हड़ताल में शामिल होकर खो बैठा। स्साला सोचता है कि हमारा नाम भी विद्रोहियों की सूची में आये। बात करने की तमीज है नहीं और स्साले झण्डा उठाने चले थे। अब चौपट होकर कमरे में बंद हो गया है। नीचे उतरने का नाम नहीं लेता। मुँह दिखाते हुए शर्म आती है! हरामी कहीं का!

क्यों कोसते हो? जो होना था, हो चुका। अब कुछ उपाय सोचो।

पिताजी भड़क उठे—हूँह! अब सोच लिया उपाय! इस जमाने में नौकरी मिलती कहाँ है? हजारों एम० ए० फर्स्ट क्लास घूमते हैं। इस बी० ए० थर्ड क्लास को कौन पूछेगा? उस वक्त नौकरी मिल गयी सो मिल गयी……… अब कहाँ रखी है नौकरी? अब तो ये घर बैठा-बैठा मक्खियाँ मारेगा………। हाथ का कोई काम करते हुए तो लाटसाहब को शर्म आती है………इन्हें तो कुर्सी चाहिए………।

माँ रुँआसी होकर अंदर चली गयी।

उसे लगा कि उसके कानों में शीशा उड़ेल दिया गया है, कि उसके कमरे में क्लोरोफार्म मिश्रित वायु भर दी गयी है, कि उसे बर्फ की शिलाओं के बीच लिटा दिया गया है, कि उसे मरुस्थल की गर्म रेत पर फेंक दिया गया है और वह छटपटा रहा है। निरन्तर। वह तिल-तिल कर जल रहा है।

उसने थाली छोड़ दी। गिलास उठाकर पानी पिया। आइने के सामने आ खड़ा हुआ। उसे अपनी ही आकृति बदली हुई नजर आयी। चेहरे पर मैल जम गया था। मुर्दानगी भी छा गयी थी। कुछ-कुछ। उसने अपने चेहरे पर हाथ फेरा। लगा कि किसी कैक्टस को सहला रहा है। उसके जी में आया कि वह अट्टहास करके देखे। अट्टहास करते समय वह बढ़ी हुई दाढ़ी के कारण पागल-सा लगेगा। पागल……? हा-हा-हा……। बहुत अच्छा रहे, अगर वह पागल हो जाये।

उसने जोर से हँसने की कोशिश की। मगर हँसी की बजाय उसकी आँखों से आँसू चू पड़े। उसका जी ग्लानि से भर आया।

उसने नाखूनों की ओर देखा। नाखून भी बढ़ गये थे। नाखूनों में मैल भर आया था। वह खाट पर गिर कर सिसकने लगा।

उसने अपने कंधे पर किसी के हाथ का दबाव महसूस किया। उसने गर्दन उठायी। डबडबायी आँखें थोड़ा दीं। सामने पत्नी थी।

आप रो रहे हैं ? उसने पूछा। स्वर में उदासी थी। उसने पत्नी को अपने पास खींच लिया। उसके सीने में मुँह छिपाकर रगड़ने लगा। थूक निगल कर वह बोला—च्च् ··· कुछ नहीं सरला, बस यूँ ही आँख भर आयी ·· ····।

फिर पत्नी उसके अस्त-व्यस्त बालों में अंगुलियाँ फेरने लगी। उदास-उदास और खोयी-खोयी-सी। चुपचाप। कई देर तक।

× × ×

लोग एक बार फिर बदल गये थे। ····

पागल कहीं का। पिताजी अपने स्नेह के गुब्बारे उसके इर्द-गिर्द छोड़ रहे थे—इस तरह कहीं हिम्मत हारा करते हैं। तूने तो अपनी सूरत ही बदल डाली। जरा शीशे में तो देख, कैसा लग रहा है ? अभी इसी वक्त जाकर दाढ़ी बनवाकर आ। मुझे तेरा यह ढंग जरा भी अच्छा नहीं लगता। ···

उसने सोचा—बिलकुल ठीक। अब आपको यह सूरत और यह ढंग अच्छा कैसे लग सकता है ? अब तो मैं ··· हुँह। और वह हँस पड़ा। मन ही मन। इच्छा हुई—पिताजी की ओर देखे। घूरकर।

भैया भी कमरे में आ गये थे। वे कह रहे थे—तू भी खूब है रे। मुँह छिपा कर ही बैठ गया। पता है, बाहर क्या-क्या खबरें आ चुकी हैं ? अब देख, सब ठीक हो गया है। नहा-धोकर कोई पिक्चर देख आ।

भगवान सब ठीक करता है। माँ ने आध्यात्मिक प्रसंग छेड़ दिया मैं हनुमान जी के सवा पाँच रुपयों का प्रसाद चढ़ाऊँगी। उसने मेरी प्रार्थना सुन ली। उसने सोचा कि अब माँ रामायण की चौपाइयाँ पढ़नी शुरू कर देगी।

पिताजी भैया को कह रहे थे—अरे, हड़ताल में यह शामिल हो और स्साली सरकार न झुके, ऐसा भी कहीं हो सकता है ? इसकी हस्तरेखाएँ बहुत प्रबल हैं। इसे नुकसान तो कभी हो ही नहीं सकता। और वे हँस पड़े—हो-हो-हो ············।

हाँ ऽ ऽ, आप बिल्कुल ठीक कह रहे हैं। भैया ने भी उनकी हँसी में साथ देते हुए कहा।

सबके आग्रह पर वह कमरे से बाहर निकला। नाई की दुकान पर जाकर दाढ़ी बनवायी। घर आकर नहाया। साफ कपड़े पहने। फिर बाहर घूमने निकल गया।

बाहर सब जगह एकही बात की चर्चा थी कि राजस्थान सरकार ने सस्पेण्ड कर्मचारियों को कार्य पर वापस ले लिया है। उनकी माँगें मंजूर करली गयी हैं। राजस्थान कर्मचारियों का अन्तरिम-राहत मिलने लगेगी।

वह घर लौटा। वह अपने कमरे में जान लगा कि माँ उसे रोक कर तपाक् से बोली—चल, पहले भर-पेट खाना खा।

वह हँसकर खाना खाने बैठ गया। गर्मा-गर्म परांठे और गोभी की सब्जी बहुत स्वादिष्ट लगी। साथ में चावल भी थे। उसने शक्कर मिला कर चावल खाए।

भाभी पानी का गिलास रख गयी।

उसे लगा कि पूरे घर में मधुर संगीत लहराने लगा है। फिर से। और ठण्डी-ठण्डी हवा चल रही है।''''''

देखा था। उसके स्वर्गीय पति तहसील में कर्मचारी थे। रिश्वत के रूप में घर पैसों से भरता गया तो सबसे पहले यह हवेली बनी, लड़कों की शिक्षा हुई और फिर पोतों की शिक्षा हुई। कोई डॉक्टर बना, कोई वकील और कोई इंजीनियर। रिश्वत की नींव पर खड़ी योग्यता की यह हवेली अपने बचपन से ही देखता रहा है चन्दर और मन ही मन कुढ़ता रहा है।

दादी के लड़के तो बूढ़े होकर रिटायर हो गए हैं अब, किन्तु उसके दो पोते डॉक्टर हैं जो ठीक अपने दादा की भाँति खूब कमाई कर रहे हैं।

चन्दर जानता है कि डॉक्टर बनने वाले दोनों पोते हमेशा पढ़ाई में फिसड्डी रहे हैं। एक-एक कक्षा में दो-दो, तीन-तीन वर्ष लगाकर ही आगे निकल पाते थे वे। उनके पास समय और धन का अभाव नहीं था। चन्दर के पास बुद्धि का तो नहीं, किन्तु इन दोनों चीजों का ही गहरा अभाव था अतः डॉक्टरी के सपने देखते-देखते इस छोटी-सी स्कूल में अध्यापक बनना पड़ा उसे। थोड़ा-सा वेतन, छोटा सा कच्चा घर, बीमार पत्नी और गम्भीर रूप से बीमार माँ। यही गृहस्थी थी उसकी। नौकरी के शुरु के पाँच वर्ष में तो केवल कर्ज उतार पाया था वह। तब सोचा था कि अगले वर्ष माँ का इलाज अवश्य कराना है। बाल-बच्चों के साथ खर्चे बढ़ते गये और साथ ही माँ की बीमारी भी बढ़ती गई। पैंतालीस की आयु में ही वह पूर्ण रूप से टूट चुकी थी। पड़ौस की दादी से भी ज्यादा बूढ़ी लगने लगी थी वह। चन्दर ने सोचा—'कैसी विचित्र बात है? जिसे संसार में अभी और जीवित रहना चाहिए, उसे जिन्दगी नहीं मिल रही है और''''और जिसने अपना पूरा जीवन सुखपूर्वक भोग लिया उसे और सुख भोग सकने के लिए जबरन जीवन दिया जा रहा है।'

दादी को केवल दुआओं की जरूरत थी और चन्दर की माँ को दवाओं की। दादी को दवाएँ और पड़ौसियों की सहानुभूति, सब मिल रहा था और माँ को?

कोई पड़ौसी औरत भी हालचाल पूछने नहीं आती थी उसके पास, क्योंकि दादी और माँ के बीच की इस डेढ़ मीटर की दूरी से सब परिचित थे। माँ से पड़ौस वालों को कुछ भी नहीं मिल सकता था जबकि दादी के परिवार से हर कोई रुपये पैसे की सहायता सदा-सदा लेते रहे हैं।

दूरी

छःमाही परीक्षा का हंगामा था स्कूल में उन दिनो। हैडमास्टर ने चन्दर को अपने दफ्तर के एकान्त मे बुलवाकर रहस्य भरे स्वरो मे कहा—"अमुक-अमुक रोलनम्बर के कुछ नम्बर बढाने हैं, ये लीजिये चाबी, और ....।"

"पर क्यों ?" तड़प कर चन्दर ने पूछा।

"दरअसल ये लड़के फेल हो रहे हैं। नम्बर बढाने मे इनका भी भला हो जायेगा और हमारा भी भेंट के रूप में पत्रम् पुष्पम् कुछ तो मिलेगा ही ...।"

"जी नही ! मैं यह सब पसन्द नही करता। माफ कीजिये।"

"ओह ! भले का जमाना ही नही है। मैं कहता हूँ, सौ रुपये तुम्हे मिल जायेंगे। और कोई होता तो पचास मे ही टरका देता मैं।"

सौ रुपये ? सौ रुपये तो बहुत बड़ी रकम होती है उसके लिए। इस रकम मे से वह अपनी माँ को भी किसी अच्छे से डॉक्टर को दिखा [illegible]ा है और ...संकल्प-विकल्प मे डूबा हुआ कुछ क्षण मौन खडा सोचता चन्दर। हैडमास्टर ने उसके इस मौन को उसकी पराजय समझा और [illegible] बढाकर उसके कधे थपथपाता हुआ बोला—"सब-कुछ चलता है चन्दर ! डोन्ट वरी ."

चन्दर की फैली हुई हथेली पर परीक्षा आलमारी की चाबी थी और [illegible]ास्टर का हाथ अपनी जेब में। सौ का नोट ! अमीर के लिए उस नोट [illegible]ोई महत्व नही होता, वह सिर्फ कागज का एक टुकडा होता है उसके [illegible] पर... उसकी बहुत सी कठिनाइयाँ उससे हल हो सकती हैं। माँ का [illegible]! बच्चो के कपडे !! किन्तु ..... किन्तु देश की शिक्षा का निम्न-[illegible] युवा आक्रोश, शिक्षित बेरोजगारी, माध्यमिक और विश्वविद्यालय की [illegible] परीक्षाओं के गिरते रिजल्ट के बडे-बडे आंकडे ! चन्दर की आँखो के [illegible] से चित्रपट की भाँति यह सब एक क्षण मे ही घूम गया। नही-..... ! उसे ऐसा कोई कार्य नही करना चाहिए जिससे देश की शिक्षा [illegible]र गिरे।

दूसरे ही क्षण आलमारी की चाबी हाथ से छूट कर फर्श पर झनझुना

पिछले माह चन्दर ने माँ से कहा था—"माँ ! अब के कुछ पैसे बचे हैं,...... जरा डॉक्टर तक चलना होगा तुम्हें।" पैसे न बचने पर भी हर महीने वह यों ही कहता है, यह बात संभवतः वह भी भली प्रकार जानती है। सूखी छाती पर हाथ फेर कर खाँसते हुए उसने कहा—"डॉक्टर का इलाज मुझे रास नहीं आता बेटा ! इंजेक्शनों की बजाय तो मर जाना अच्छा समझूँगी। तुम तो ।" खाट के नीचे की परात में बलगम थूक कर निढाल होते हुए फिर कहा उसने—"...तुम तो सरकारी औषधालय से खाँसी की कुछ पुड़िया ला दिया करो। बस !....पैसे बचे हैं तो अच्छा है। छोटे बच्चे को सर्दी के कुछ कपड़े बनवादे। ठंड बहुत पड़ने लगी है।" स्वयं मरणासन्न होते हुए भी बचत के वे पैसे, जो कभी बचते ही नहीं थे, उसके बच्चे पर खर्च करना चाहती है माँ। चन्दर का मन विषाद के घनीभूत कोहरे में डूब-सा गया। लगता है माँ उन सब सपनों से निराश हो गई है जो कभी उसकी आँखों में रचे गये थे। उन सब आकांक्षाओं की झूठी तसल्ली के सहारे चलते-चलते जैसे वह टूट गई है और अब टूटी हुई जिन्दगी को बहुत दिनों तक ढोने का साहस उसने खो दिया है। अब वह जीवित रहना नहीं चाहती और 'और दादी सब कुछ भोग लेने के बाद भी मरना नहीं चाहती। लोग उसे जलाए जाने की बजाय जिलाए रखना चाहते हैं। उसके डॉक्टर बेटे उसे ऑक्सीजन देते हैं, टॉनिक देते हैं, और चन्दर अपनी माँ को सिर्फ झूठी तसल्ली ही दे पाता है। क्या करे वह ? बँधे बंधाए वेतन में तो परिवार का गुजारा ही बमुश्किल हो पाता है। इस छोटे से गाँव में ट्यूशन मिल पाने की संभावना भी नहीं। ट्यूशन का मतलब सिर्फ पास करने की गारंटी ही समझा जाता है यहाँ। फिर ..... ? पिछले साल पत्नी बीमार हुई तो कुछ रुपये उधार लेकर इलाज करवाया था चन्दर ने। सौ रुपये का वह मेडिकल बिल अब तक दफ्तर से मंजूर होकर नहीं आया था। उसके बाद के कई साथियों के झूठे-सच्चे बिल मंजूर हो गये थे पर.....। झुँझलाए हुए चन्दर ने सोचा—'कितनी धाँधली चलती है ? कितना बड़ा पेट होता है दफ्तरों का ?' औरत नौ महीनों में एक बच्चा तैयार कर लेती है किन्तु अट्ठारह महीनों में दफ्तर उसका एक बिल मंजूर नहीं कर सका था।

पत्नी की बीमारी का वह बिल अब तक स्वीकृत हो जाता तो माँ की बीमारी में काम आता। पैसों का सुभीता देखकर माँ भी इलाज के लिए इन्कार न होती।

छःमाही परीक्षा का हंगामा था स्कूल में उन दिनों। हैडमास्टर ने चन्दर को अपने दफ्तर के एकान्त में बुलवाकर रहस्य भरे स्वरों में कहा—"अमुक-अमुक रोलनम्बर के कुछ नम्बर बढ़ाने हैं, ये लीजिये चाबी, और ......।"

"पर क्यों ?" तड़प कर चन्दर ने पूछा।

"दरअसल ये लड़के फेल हो रहे हैं। नम्बर बढ़ाने में इनका भी भला हो जायेगा और हमारा भी भेंट के रूप में पत्रम् पुष्पम् कुछ तो मिलेगा ही ...।"

"जी नहीं ! मैं यह सब पसन्द नहीं करता। माफ कीजिये।"

"ओह ! भले का जमाना ही नहीं है। मैं कहता हूँ, सौ रुपये तुम्हें मिल जायेंगे। और कोई होता तो पचास में ही टरका देता मैं।"

सौ रुपये ? सौ रुपये तो बहुत बड़ी रकम होगी है उसके लिए। इस रकम में से वह अपनी माँ को भी किसी अच्छे से डॉक्टर को दिखा सकता है और ...संकल्प-विकल्प में डूबा हुआ कुछ क्षण मौन खड़ा सोचता रहा चन्दर। हैडमास्टर ने उसके इस मौन को उसकी पराजय समझा और चाबी बढ़ाकर उसके कंधे थपथपाता हुआ बोला—"सब-कुछ चलता है मि० चन्दर ! डोन्ट वरी "

चन्दर की फैली हुई हथेली पर परीक्षा आलमारी की चाबी थी और हैडमास्टर का हाथ अपनी जेब में। 'सौ का नोट ! अमीर के लिए उस नोट का कोई महत्व नहीं होता, वह सिर्फ कागज का एक टुकड़ा होता है उसके लिए; पर... उसकी बहुत सी कठिनाइयाँ उससे हल हो सकती हैं। माँ का इलाज ! बच्चों के कपड़े !! किन्तु ...... किन्तु देश की शिक्षा का निम्न-स्तर, युवा आक्रोश, शिक्षित बेरोजगारी, माध्यमिक और विश्वविद्यालय की ऊँची परीक्षाओं के गिरते रिजल्ट के बड़े-बड़े आँकड़े ! चन्दर की आँखों के सामने से चित्रपट की भाँति यह सब एक क्षण में ही घूम गया। नहीं-नहीं...... ! उसे ऐसा कोई कार्य नहीं करना चाहिए जिससे देश की शिक्षा का स्तर गिरे।

दूसरे ही क्षण आलमारी की चाबी हाथ से छूट कर फर्श पर झनझना

उठी

ठी । पूरे वेग से चाभी फर्श पर फेंक कर सधे हुए कदमों से बाहर
ा गया वह ।

हैडमास्टर के मुँह पर विस्मय, झेंप और क्रोध के मिले-जुले भाव थे । लगता था जैसे उसके उथले आत्मसम्मान एवं रिश्वती अहं को गहरी ठेस लगी हो । आखिरी पीरियड में स्कूल की डाक आई तब चन्दर को विदित हुआ कि पत्नी की बीमारी का बिल मंजूर होकर आ गया है । दफ्तर के घर में देर तो हो गई थी किन्तु अंधेरा नहीं हुआ था । सालों बाद ही सही, पास तो हो ही गया था वह बिल । इस सूचना से उसके मुख पर खुशी की एक अपूर्व लहर दौड़ गई । चन्दर को लगा कि कुछ देर पहले रिश्वत के लोभ में न फँसने का ही पुरस्कार प्राप्त हुआ है उसे । अब वह अपनी माँ का इलाज अवश्य करायेगा । कुछ पैसे बचे तो बच्चों के लिए सरदी के कपड़े भी ! और … और … उसने अपने कपड़ों की ओर देखा । शरीर पर से फिसलती हुई निराश निगाहें पैरों पर जाकर अटक गईं ।

टूटी हुई चप्पल, फीतों के जोड़ की जगह आलपिनें और घिसा हुआ तल्ला !

अब सब ठीक हो जायेगा । मन ही मन जैसे वह आश्वस्त हो गया हो ।

छुट्टी के बाद मौहल्ले में घुसा तो रोने की आवाज सुनाई दी उसे । एक ऐसा रुदन जो केवल किसी मौत पर ही आयोजित किया जा सकता है । 'क्या माँ ?' चन्दर ने सोचा—'नहीं-नहीं ! उसके घर में तो रोने वाली केवल उसकी पत्नी ही है । अकेली औरत इतना तेज कोलाहल नहीं कर सकती ।'

उसे विश्वास नहीं आया कि अन्य औरतें इस डेढ़ मीटर दूरी को नापकर रुदन में उसकी पत्नी का सहयोग करने उसके घर गई होंगी ।

'तो क्या दादी ? शायद…… ।'

जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाकर गली के आखिरी नुक्कड़ पर पहुँचा तो चन्दर को मालूम हुआ कि बहुत कोशिशों के बाद भी दादी को नहीं बचाया जा सका । कैसी है मौत की ये नब्ज़ें जो केवल समानान्तर चलना ही जानती है ?

निर्मलमाला सुममेद्दर

अमीर गरीब, जवान-बूढ़ा और महल-झोंपड़ी, सब उसके लिए बराबर हैं। किसी का भी लिहाज नहीं करती वह। मौत को रिश्वत देकर भी नहीं बहलाया जा सकता।

चन्दर को एहसास हुआ कि मृत्यु इंजेक्शन और दवा की पुड़िया में कोई अन्तर महसूस नहीं करती और इन्सान द्वारा बनाई हुई दूरियाँ भी उसके निर्णय में कोई बाधा नहीं डाल सकती।

22

न्याय के कटघरे मे

रघुनाथ 'विश्वेश

• • •

कह नही सकता ग्राप इसे सच मानेंगे या झूठ, पर जो कुछ भी मैं कहूँगा सच कहूँगा, सच के सिवा कुछ भी नही।

माई लार्ड एण्ड जेन्टल मेन ग्रॉफ ज्यूरी! जिस दिन का यह वाकिया है मुझे ग्रच्छी तरह से याद है मैंने ग्रपने प्रधानाध्यापक जी से साढे चार बजे हाथ जोडकर कहा था मेरी दादी माँ सख्त बीमार है मुझे ग्राज घर जाना जरूरी है ग्रौर मेरा गाँव इस गाँव से पंद्रह मील दूर है ग्रगर ग्रभी चला जाता हूँ तो मोटर से दस मील दूरी तक पहुँच जाऊँगा ग्रौर सड़क के किनारे उतर कर वहाँ से सिर्फ पाँच मील ही पैदल चलना पड़ेगा। ग्रतः मुझे जाने की छुट्टी दे दो। पर वे बड़े ईमानदार ग्रौर ड्यूटी के सच्चे प्रधानाध्यापक जी थे जिनके राज्य मे गधे गुलाब जामुन खाते ग्रौर घोड़े घास को तरसते थे। मुझे कहा "नहीं भाई निदेशक महोदय जी का ग्रादेश है साढ़े पाँच बजे से पहले कोई भी ग्रध्यापक विद्यालय नही छोड़ सकता।" क्या करता दिल मसोस कर रह गया क्योंकि ग्राज़ाद भारत का गुलाम नौकर जो ठहरा!

देखते-देखते मोटर ग्रपने निश्चित समय के ग्रनुसार एक धूल का बादल उड़ाती हुई शाला के बाहर कच्ची सड़क मे होकर गुजर गई।

हां ! तो मैं कह रहा था मैंने बड़ी मुश्किल से साढ़े पाँच बजाए और उसके बाद मैंने अपनी साइकिल सम्भाली और रास्ते में जंगली जानवरों से आत्म-रक्षा हेतु एक छोटी सी कटार कमर पर लटका ली और चल पड़ा अपने गाँव की ओर। क्योंकि अब इसके अलावा कोई साधन घर पहुँचने का नहीं था। चलते-चलते अरावली की गहन घाटियों में सूर्य डूब गया अन्धकार की भीनी चादर पगडण्डी ने ओढ़ ली।

अन्धकार बढ़ता जा रहा था। मैं भी अपनी धुन में साइकिल के पैडल घुमाये चला जा रहा था कि अचानक एक धमाका हुआ, मैं चौंक गया। यह गोली किधर से चली ? पर देखता क्या हूँ किसी पत्थर से कट लग जाने के कारण मेरी साइकिल का पहिया बर्स्ट हो गया। निराश हो पैदल ही आगे बढ़ा।

भाद्रपद की गहन अन्धेरी रात थी आसमान में काली घटाओं की घुड़दौड़ मची हुई थी। बूँदा-बूँदी शुरू हो गई। आगे चलना दूभर हो गया। आँखें कोई आश्रय ढूँढने लगी पर चारों तरफ अन्धकार फैला था। हाथ से हाथ भी दीखना मुश्किल था। इतने में तेज बिजली चमकी मैंने देखा, कुछ ही दूर पत्थर की बनी एक छतरी दिखाई दी जो शायद किसी की समाधि थी। मैं उसी ओर बढ़ चला। छतरी में पहुँच कर सन्तोष की सांस ली। फिर बिजली चमकी मैंने देखा चिथड़ों में लिपटा एक और प्राणी वहाँ अपने में ही सिमट सिकुड़ कर सोया हुआ था। उसने एक करवट बदली और पुनः शांत सो गया शायद दिन भर का थका होगा। धरती माँ की प्यारी-प्यारी गोद पाकर आराम की नींद सो गया था। मैंने भी अपनी साइकिल रख दी और वहाँ बैठ गया। लगता था बरसात थमने का नाम ही नहीं लेगी। चारों ओर अन्धकार फैला था। कह नहीं सकता रात्रि का कौनसा पहर था। बहुत इन्तजार के बाद भी जब वर्षा नहीं रुकी तो मैं भी उस मानवीय प्राणी के पास ही अपना टाविल बिछाकर लेट-सा गया और बरसात रुकने का इन्तजार करने लगा था। वैसे भी मैं जानता था कि अब इस अन्धेरी रात में अपने गाँव तक पहुँचना नामुमकिन था अतः वहीं रुकना उचित समझा। जाने कब मेरी आँख लग गई। मैंने देखा न वर्षा थी, न मैं वहाँ सोया हुआ हूँ, न मैं साधारण अध्यापक हूँ। मैं हल्दीघाटी के मैदान में चेतक घोड़े पर सवार मेवाड़ पति वीर शिरोमणी महाराणा प्रताप के मुट्ठी-भर

जपूत सैनिकों में से एक हूँ और हम सब उनके आदेश की प्रतीक्षा में हैं क कब मुगल सेना पर धावा बोला जाय।

इतने में सामने से "अल्ला-हो-अकबर" का भीषण निनाद हुआ। फिर या था हम सब भी राणा के एक इशारे पर जान हथेली पर लेकर "जय कलिङ्ग" के घोर गर्जन के साथ मुगल सेना के अथाह समुद्र में कूद पड़े। तल-वारों के एक-एक झटके से लाशो के अम्बार लगने लगे। हम मुट्ठी भर राज-पूत इतनी बड़ी मुगल सेना के सामने क्या थे फिर भी माँ भवानी की कृपा से हमारी दुधारी तलवारें काली घटाओं के मध्य बिजली-सी कौंध-कौंध जाती थीं। मैंने देखा राणा प्रताप दुश्मनों के मध्य घिर गये हैं और एक मुगल उनके पीठ पीछे से तलवार का वार करने ही वाला है कि मैं पलक मारते उनके पास पहुँच गया और मैंने अपनी तलवार पर उसके उस वार को तो झेल लिया पर मेरा हाथ एक झन्नाटे के साथ काँप गया। मैंने देखा मेरी तलवार टूट कर हाथ से छूट कर गिर चुकी है। सोचने का समय नहीं था वह दूसरी वार वीर शिरोमणि राणा पर वार करने ही वाला था कि मैंने अपनी कमर में बँधी कटार झटके से खीच ली और पूरे जोर से उसके सीने में भौंक दी। एक हृदय विदारक चीख वातावरण मे गूँज उठी मेरी आँखें खुल गई। मैं हड़बडा कर उठा। मैंने देखा मेरे पास का वह प्राणी लहू-लुहान हुआ जिन्दगी की अन्तिम साँसें गिन रहा है। मेरी कटारी उसके सीने मे घुसी हुई है। मैं हतप्रभ-सा इधर-उधर देखने लगा। बारिश थम चुकी थी बादल फट गये थे। उषा की लाली आसमान पर छा गई थी, मुझे लगा सारा आसमान मानो खून से रक्त-रञ्जित हो गया है। मैंने इधर-उधर देखा मैं हल्दीघाटी के रक्त-तलैया की एक छतरी मे खड़ा हूँ जहाँ किसी जमाने में राणा प्रताप और मुगल सेना में भीषण युद्ध हुआ था और उस वक्त इतना खून बहा था कि आज भी यह स्थान "रक्त तलाई" के नाम से जाना जाता है। वहीं पास से मेरे गाँव की ओर जाने का रास्ता था। मैं किंकर्तव्यविमूढ़ सा हो गया। कभी पूरब में छाई लाली को देखता कभी छतरी के फर्श पर बिखरे लाल-लाल खून को। इससे पहले कि मैं कहीं भाग निकलूँ पास के गाँव वालों ने मुझे घेर लिया शायद उसकी चीख गाँव वालों ने सुन ली थी। "मार डाला बेचारे को पकड़ लो! पकड़ लो!!" की आवाजें कान के पर्दे फाड़ने लगीं। मैं निर्निमेष दृष्टि से उनकी ओर देखता रह गया।

मैंने देखा मेरे हाथों मे पुलिस द्वारा हथकड़ियाँ डाली जा चुकी हैं मेरी कमर मे अब भी उस कटारी का खाली पटा लटक रहा था जिसे मैंने अपनी जंगली जानवरों से आत्म-रक्षा हेतु लटकाई थी। मैं बिना किसी विरोध के उनके साथ हो लिया और आज आपके सामने इस न्यायालय मे न्याय हेतु उपस्थित हूँ। आप न्यायाधीश हैं आपका न्याय मैं ईश्वर न्याय मानूँगा आप जो चाहे सजा मुझे दें मैं सहर्ष स्वीकार करूँगा। क्योंकि यह सच है कि मैंने ही उसकी हत्या की है। मैं खूनी अवश्य हूँ पर मैं नहीं जानता, मैंने पाप किया या पुण्य। न जाने, पूर्व-जन्मो मे वह कौन था, मैं कौन था वह नही सकता मुझे जो कहना था कह चुका। फैसला आपके हाथ है।

"जय एक लिङ्ग ! ।"

23

मेरा कमरा ! मेरा साथी

भागीरथ भार्गव

* * *

सब चले गये हैं और मैं अकेली हूँ।

मेरे अपने सब चले गये हैं, मेरे लिए छोड़ गये है— एक अकेलापन। एक ऐसा अकेलापन जो मेरे चारों ओर स्थाई रूप में घिर आया है—मेरे अपने परिवेश का एक अंग बन गया है। सच, मैं अकेली रह गई हूँ—सब चले गये हैं।

अकेली हूँ और शून्यता व अकेलेपन से भरा यह मेरा चिर-परिचित वातावरण है। और कुछ ऐसी ही है सुबह से शाम तक की खोई हुई, भटकती हुई पत्थरों पर सिर पटकती मेरी दिनचर्या। इस दिनचर्या का एक बड़ा भाग बीतता है, इस कमरे में। यह कमरा मेरा आश्रयदाता है। सच, मुझे इससे प्यार है। मेरा साथी—मेरा कमरा मेरा हमदम, मेरा दोस्त।

कमरे में एक ओर बुक शेल्फ में मेरी पुस्तकें है जो मैंने एम० ए० के लिए खरीदी थी। इन पुस्तकों के साथ ही हैं मेरे वे नोट्स जो मैंने परीक्षा के लिए परिश्रम से बनाये थे या फिर मेरे लिए बिन्नू ने तैयार किये थे। कौन बिन्नू? एम० ए० का मेरा सहपाठी। उसका पूरा नाम था विनोद मिश्रा। पर, मैं तो बिन्नू ही कहती हूँ। कहती क्या हूँ, कभी कहा करती थी। भला आदमी, कितना परिश्रमी था! साथ-साथ हम पढ़ा करते थे, इसी कमरे में। रात अँधेरी और गहरी हो जाती, इसके साथ ही घड़ी टिक-टिक करती ही तेजी से आगे बढ़ जाती। इस बीच मेरी आँखें नींद में बोझिल हो झपकने लगती—मैं बहुधा वहीं अपनी कुर्सी पर ही नींद लेने लगती। पर यह बिन्नू टेबिल लैम्प के प्रकाश में खरगोश-सा सहमा हुआ नीचे गर्दन झुकाए, दोनों कानो को ऊपर उठाए पढ़ता रहता था या फिर कुछ लिखता रहता और जब लिखना बन्द कर देता तो मुझे आवाज लगाता—बहुत हल्की व धीमी आवाज, एक सहमी हुई आवाज। सुन आँखें खोल देती और वह चलते हुए कहता—"मनो, तुम भी ये नोटस उतार लेना।" और वह बिना किसी औपचारिकता के वापस चला जाता।

फिर वह आता, धीरे से पुकारता—"मनो" जैसे मनो को आवाज देना अपने आपमें एक चोरी हो, एक अपराध हो। कई बार चाय का प्याला पकड़ते हुए या पुस्तक लेते समय बिन्नू से मेरी अंगुलियाँ छू जाती। वह छुई-मुई सा सिकुड़ जाता और फिर बहुत देर तक नीची निगाहे किये अपने पैर के अँगूठे से नीचे कार्पेट पर कुछ खुरचता रहता। मेज के नीचे मेरी पिंडलियो से अपने पैर छू जाने तब भी उसे कुछ ऐसा ही होने लगता। बिन्नू सचमुच कायर ही था। दूर-दूर से देखता रहता और पास आने पर उसे लाल ज्वर हो आता।

कमरे में कॉर्निस पर मेरा बस्ट साइज का एक फोटो, फ्रेम में जड़ा है। फोटो के पीछे बैक-ग्राउन्ड में म्यूजियम है, जयपुर का अल्वर्ट हॉल। किसने खींचा था यह फोटो? विपिन अग्रवाल ने। कौन था मेरा यह विपिन अग्रवाल? सचमुच यह तो बतलाना मेरे लिए कठिन ही होगा। बस था वह मेरा, इतना मैं जानती हूँ। वह मेरा था, केवल मेरा। वह मेरा होने वाला सब-कुछ था। क्या वह मेरा सब-कुछ हो सका?

मैं तो विगत की बात कर रही थी। अब तो वर्तमान है। अब तो सब चले गये हैं—मुझे अकेली छोड़कर। यह विपिन भी कहीं चला गया है।

किसने लिखे थे—विपिन ने। मेरे विपिन ने—जिसे मैंने अपना केवल अपना ही समझा था, उसने मुझे अपना माना था। आज भी जब पत्रों के सम्बोधनों को स्मरण करती हूँ तो एक अवर्णनीय सरसराहट से मेरी यह दुबली, पतली, सांवली देह कई रंग बदलने लगती है। सच, कभी-कभी तो लाज में ही गड़ जाने को मन करता है। जब पढ़ती हूँ—"मेरे सपनों की रानी" तो बस वैसा ही बनने को जी चाहता है। बार-बार मन करता है—सज सँवर कर दुल्हन बन बैठ जाऊ और डाल लूँ अपने मुखड़े पर अवगुंठन, एक झीना सा अवगुंठन और बैठी रहूँ एक प्रतीक्षा में। इसी प्रतीक्षा में—"सपनों की रानी" कहने वाला वह मेरा मीत आ जाये तो मुझे यूँ प्रतीक्षारत पाए। वह आजाए तब मैं अपने झीने अवगुंठन से उसे देखूँ और फिर शीघ्र ही अपनी आंखें धीरे-धीरे मींच लूँ, एक आने वाले सुख व आनन्द की कल्पना में। और बस मींचे रहूँ तब तक कि वह मीत अवगुंठन उठा न दे। वह अवगुंठन उठादे—उसके जलते अधर मेरी ओर बढ़ें, उसकी उन्मादिनी बाहें मेरी ओर बढ़ें और मैं सचमुच उस क्षण समर्पित हो जाऊँ। पर"" पर" वे क्षण तो अब कभी नहीं आने वाले हैं, मैं किसी की प्रतीक्षा नहीं करने वाली हूँ। कोई आने वाला नहीं है।

और भी बहुत-कुछ है—मेरी अटैची में. कुछ खिलौने हैं। कैसे खिलौने? एक शिक्षित युवा लड़की की अटैची में खिलौने। है ना एक विरोधाभास? पर अब उन सबको क्या सज़ा दूँ? ये खिलौने कुछ प्रेजेण्ट हैं। ये मेरे लिए खिलौनों के समान ही तो हैं। अब क्या महत्त्व रह गया है इनका? तब क्या एक दिन इन्हें बांट दूँ किन्हीं जरूरतमन्दों को ताकि ये फिर से किसी मनो को किसी विपिन द्वारा दिये जा सकें? पर क्या मनो इन्हें अपने पास नहीं रख सकती है? उसे ऐसा इनसे क्या अलगाव हो गया है? ये तो स्मृति चिन्ह हैं—स्मृति महल!

अजीब हैं मेरे ये स्मृति महल जिनकी अटारियों पर मैं चढ़ नहीं सकती, जिनके झरोखों में बैठकर बाहर के माहौल से सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सकती। ये स्मृति महल तो महज कागज के महल हैं, तिनकों के महल। वास्तव में ये महल जाने कब से खोखले हो धूल धूसरित हो चुके हैं। पर न जाने, फिर भी ये क्यूँ खड़े हैं अभी तक? संभवतया ये स्मृति महल मेरे व्यक्तित्व के

अच्छे विश्व हैं। मेरा व्यक्तित्व भी तो खोखला है और यूँ ही भटकता जा रहा है।

यह प्रेम-पत्रों का एलबम, ये प्रेजेन्ट्स से भरा जादू के खिलौनों का पिटारा, जिन्हें मैं खोखले स्मृति महल गढ़ा दे रही हूँ—क्या इन्हें नष्ट कर दूँ?

अब सब चले गये हैं, मेरे अपने चले गये हैं, तब इन्हें ही सँजो कर रख लूँ। भले ही इनका रखना ताबूत में बन्द किसी लाश को रखने जैसा ही हो। मिस्र के पिरामिडों में भी तो ऐसे ही फेरो को ताबूत में ही रहने देते हैं।

मेरे कमरे में खिड़कियाँ हैं—जिन पर हल्के रंग के रंगीन परदे लगे हैं, जो निरन्तर फड़फड़ाते रहते हैं—सर सर धीमी धीमी आवाज के साथ, सड़क पर से गुजरने वाली हर आवाज, हर गन्ध इन्हीं खिड़कियों से मेरे पास आती है। इन ध्वनियों और विभिन्न गन्धों में मैं बाहर की दुनिया का आभास पाती हूँ। आभास पाकर जैसे अपने अकेलेपन को कुछ हल्का कर लेती हूँ। किन्तु, इस अकेलेपन का यह बोझा वास्तव में कम हो जाता है क्या?

इन खिड़कियों से आने वाली आवाजें आज तो बोझा ही बढ़ाती हैं, किन्तु एक दिन अवश्य ही अकेलापन दूर हो जाता था, जब किसी साइकिल की घन्टी बजती तो मैं चौंक उठती थी। मैं सड़क की ओर देखने लगती थी, तब मुस्कुराता विपिन दिखलाई देता था। शैतान, हवा में फ्लाइंग 'किस' छोड़ता हुआ चला आता था। तब मुझे अनुभव होने लगता था जैसे वह हवा में ही उड़ता हुआ मेरे पास आ गया है। सच, उस फ्लाइंग किस की मीठी जलन मुझे अपनी हथेली पर अनुभव होने लगती थी और मेरे अधर उसे पकड़ने के लिए फड़फड़ा उठते थे। पर वे दिन और ही थे।

"बीबीजी, चाय ले आऊँ?" यह नौकरानी लक्ष्मी का स्वर है, जो करीब तीन बजे के आस-पास रोज ही सुनाई देता है। मैं उसे अपनी स्वीकृति दे देती हूँ।

चाय की ट्रे कमरे में रख कर लक्ष्मी लौट गई है। कमरे का अकेलापन चाय का प्याला तैयार करते हुए मुझे फिर अनुभव होने लगता है। पास में रखी दूसरी कुर्सी खाली है। कभी इस कुर्सी पर विपिन बैठा करता था,

कभी-कभी मेरे साथ चाय पीता था। फिर इसी कुर्सी पर बैठकर मेरे साथ शिरीन चाय पिया करता था—ढेरों कहकहों के बीच। न जाने अब वे कहकहे कहाँ जाकर खो गये हैं। अब तो इन दीवारों पर उन कहकहों की परछाइयाँ तक भी दिखलाई नहीं देती हैं।

पास में रखी कुर्सी खाली है और कमरे में गूँजने वाले कहकहे कहीं खो गये हैं, किसी भँवर में जाकर डूब गये हैं। मैं अकेली हूँ, निपट अकेली।

मैं अकेली हूँ अपने कमरे में और मेरा कमरा मेरा अपना साथी बना हुआ है।

● ● ●

24

स्वाधीनता का मूल्य

विश्वनाथ पाण्डेय 'प्रणव'

* * *

नीमा विजय के पश्चात् यूनानी आक्रमणकारी सिकन्दर महान् ने अस्सकेनों की राजधानी मस्सक को जिस समय घेरा, यही समझा था कि अनेकों जीते हुए राज्यों की भाँति इस पर भी आसानी से विजय पा लेगा। लेकिन, उसका यह विचार स्वप्न की भाँति टूट कर रह गया। भारत में प्रवेश के पश्चात् पहली बार उसे भारतीय वीरों के शौर्य का सामना करना पड़ा। उसे क्या पता था कि भारतीय वीर इतने निर्भीक एवं पराक्रमी होते हैं!

गौरी नदी के पूर्व में स्थित मस्सक का विशाल दुर्ग उस समय अभेद्य एवं अपराजेय समझा जाता था। इतना ही नहीं, यहाँ की रण-बाँकुरी सेना भी वेमिशाल थी; युद्ध-भूमि में सिर पर कफ़न बाँध कर उतरती थी और दुश्मनों की जान के लाले पड़ जाते थे। यही कारण था कि महत्वाकांक्षी सम्राट सिकन्दर जैसे विश्व-विख्यात योद्धा को भी लोहे के चने चबाने पड़े।

सिकन्दर की सेना ने मस्सक नगर को चारो तरफ से घेर रखा था। उसने आक्रमण करने से पूर्व नगर के राजा को अपनी अधीनता स्वीकार करने के लिए सन्देश भेजा। किन्तु, स्वाभिमानी राजा ने उसकी इस शर्त को ठुकरा दिया। जिसका परिणाम यह हुआ कि उसे अपनी स्वाधीनता के लिए बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ी। सिकन्दर ने अपनी सेना को नगर मे घुस जाने का आदेश दिया। सेना नगर मे घुस पडी। अस्सकेनी सेना भी तैयार बैठी थी। उसने अपने राजा के एक इशारे पर ही यूनानी सेना पर आक्रमण कर दिया। दोनों सेनाओ मे भीषण सग्राम मच गया। बहादुर अस्सकेनी जनता ने अपने सिपाहियो का साथ दिया और कुछ ही घण्टो मे सिकन्दर की विशाल सेना के छक्के छुड़ा दिये। सिकन्दर की सेना को पीछे हटना पडा।

अपनी इस पराजितावस्था को देखकर सिकन्दर का खून उबल आया। उसने अपने चुने हुए अश्वारोहियों को आगे किया और स्वयं सेना का नेतृत्व करते हुए नगर पर पुन. आक्रमण किया। अस्सकेनी सेना इससे रचमात्र भी विचलित नही हुई। सिकन्दर की तरह इस सेना का नेतृत्व स्वयं यहां का राजा कर रहा था। दोनों सेनाओं मे एक बार पुन: टक्कर हुई। फिर से भयानक युद्ध प्रारम्भ हो गया। सिर पर कफन बांध कर लडने वाली अस्सकेनी सेना ने यूनानियों पर गजब ढानी शुरू कर दी। लगता था, इस बार भी सिकन्दर को पीछे हटना पडेगा। लेकिन, इसी बीच अस्सकेनी राजा को शत्रु का बच्छा लगा और वह रणभूमि मे सदा के लिए सो गया।

बिना सवार के घोड़े व बिना महावत के हाथी की जो स्थिति होती है, वही युद्ध-भूमि मे बिना सेनानायक के सेना की होती है। अपने राजा की मृत्यु से अस्सकेनी सेना विचलित हो गई। सिकन्दर ने सोचा, अब वह हथियार डाल देगी। लेकिन, उसे क्या पता कि यह उसका कोरा भ्रम था। इधर सेना ने दूसरी रणनीति अपनायी। अचानक सब दुर्ग के द्वार पर सिमटने लगे। यकायक दुर्ग का द्वार खुला और कुछ सिपाहियो को छोडकर शेष दुर्ग के अन्दर बन्द हो गये। बाहर बचे सैनिक एक-एक करके उनसे मुकाबला लेते-लेते वीरगति प्राप्त कर लिये।

सिकन्दर ने दुर्ग का द्वार तोडने की बहुत कोशिश की, किन्तु असफल रहा। रानी को जब राजा के वीरगति प्राप्त होने का समाचार मिला, तो वह भीतर मे टूट कर चूर-चूर हो गयी। फिर भी, उस विषम परिस्थिति मे

सने साहस से काम लिया। वह बराबर सैनिकों का मनोबल बढ़ाती रही और दुर्ग की रक्षा का हर सम्भव उपाय सोचती-करती रही। सिकन्दर दुर्ग पर घेरा डाले पड़ा रहा।

उस रात रानी को नींद न आई। युद्ध-मुक्ति के हर उपायों पर उसने विचार किया। लेकिन, सिवाय अधीनता स्वीकार करने के उसके पास कोई दूसरा चारा न रहा। सिकन्दर की विशाल सेना के सामने उसके मुट्ठी भर सैनिक कब तक टिक सकते थे? राजा की मृत्यु से उसका दिल टूट चुका था। इतना बड़ा रक्तपात उसने जीवन में कभी नहीं देखा था। वह अब और रक्तपात देखना नहीं चाहती थी। अन्त में वह इस निष्कर्ष पर पहुँची कि यदि सिकन्दर उसकी व उसकी जनता की पूर्ण सुरक्षा का वचन दे दे, तो वह उसकी अधीनता स्वीकार कर लेगी।

प्रातःकाल एक सैनिक को दूत के रूप में दुर्ग के एक गुप्त मार्ग से सिकन्दर के पास भेज दिया गया। सिकन्दर को जब यह समाचार मिला कि रानी उसकी अधीनता स्वीकार करने के लिए तैयार है, तो वह बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने कहलवा दिया कि वह उसकी पूरी सुरक्षा का वचन देता है। दूत ने दुर्ग के पास जाकर संकेत दिया और दुर्ग का द्वार खोल दिया गया। सिकन्दर के सैनिकों ने दिन भर कोई कार्यवाही नहीं की। दूसरे दिन सिकन्दर के स्वागतार्थ दुर्ग में तैयारियाँ की जाने लगीं। सिकन्दर चुप-चाप सब देख रहा।

संध्या हुई। कुछ सैनिकों ने सुझाव दिया कि दुर्ग का द्वार बन्द कर दिया जाय। किन्तु, रानी ने ऐसा करना उचित नहीं समझा। उसने कहा —"जिसने हमें सुरक्षा का वचन दिया है, उसके प्रति हम अविश्वास करें, यह हमें शोभा नहीं देता।" द्वार खुला रखा गया। दिन भर के थके सैनिक निश्चिन्त होकर सो रहे। इधर सिकन्दर के अन्तर में अन्तर्द्वन्द्व चल रहा था। एक सामान्य सेना के सामने उसे एक बार हार कर पीछे हटना पड़ा था; एक सामान्य दुर्ग को तोड़कर अन्दर नहीं जा सका था और मुट्ठी भर सैनिकों ने उसकी विशाल सेना के दाँत खट्टे कर दिये थे ...., यह सब उसे रह-रह कर विचलित कर दे रहे थे। वह उनके प्रति ईर्ष्या से जल उठा। उसने बदला लेने का प्रण किया। उसके मन ने समझाया, दिये गये वचन का स्मरण दिलाया, लेकिन पापात्मा सिकन्दर ने मन के आग्रह को ठुकरा कर अपने सैनिकों को दुर्ग में घुस जाने का आदेश दे दिया। रातों-रात दुष्टों ने सोये हुए सात हजार

निर्दोष सैनिकों को मौत के घाट उतार दिया।

रानी को जब इस विश्वासघात का समाचार मिला, तो वह क्रोध से धधक उठी। उसने बचे हुए सैनिकों को ललकारा। देखते ही देखते किले के अन्दर कुहराम मच गया। दोनों तरफ से सिर कट-कट कर गिरने लगे। असकेनी सैनिकों को अब अपने प्राणों का मोह रत्तीभर भी नहीं रहा था। उन्हें मरना था, इसलिए उन्होंने अधिक से अधिक मारकर मर जाना ही अच्छा समझा और अपने प्राणों पर खेल गये। जो भी उनके सामने आता, गाजर-मूली की भाँति जमीन पर छटपटाने लगता था। यूनानी सैनिक घबरा गये। सिकन्दर ने देखा, उसके सैनिक हताश हो रहे हैं। इसलिए, वह बढ़कर सामने आ गया और अपने सैनिकों को ललकारा। उसके सैनिकों में फिर से बल आ गया। वे फिर पूरे जोश-खरोश के साथ लड़ने लगे।

सिकन्दर की विशाल सेना के आगे अंगुलियों पर गिनी जा सकने वाली असकेनी सेना भला कब तक टिक सकती थी। धीरे-धीरे सभी समाप्त हो चले। सिकन्दर मन ही मन मुस्कराया और रनिवासों की तरफ बढ़ चला। लेकिन सबसे बड़ा आश्चर्य उसे तब हुआ जब उसने अपने सामने दुर्ग की औरतों को सैनिक-वेश में देखा। इनका नेतृत्व स्वयं रानी कर रही थी। सिकन्दर ने पहली बार देखा और सीखा कि भारतीय औरतें केवल पर्दे के अन्दर रहने वाली अबला ही नहीं होतीं, वे समय पड़ने पर रणचंडी का रूप भी धारण कर सकती हैं। अधर्म की लड़ाई लड़ने वाला विश्वासघाती सिकन्दर तब भी नहीं हिचकिचाया और उनके विरुद्ध युद्ध का आदेश दे दिया।

युद्ध का परिणाम निश्चित था। जो होना था वही हुआ। अपने आखिरी दम तक लड़ते-लड़ते सभी औरतें काम आ गईं।

दुर्ग की विशाल दीवारें भीतरी साज-सज्जा, उदास खड़े रंगमहल .... सभी वीरान हो चुके थे। सिकन्दर ने दुर्ग में घूम-घूम कर देखा, जहाँ भी नजर चारों ओर उदासी, रक्तपात, सिर-धड़ यही सब नजर आये। लेकिन पाषाण-हृदय यूनानी के लिए इनकी कोई कीमत नहीं थी। इनसे उसका क्या वास्ता था? वह आया था दिग्विजय के लिए, धन-सम्पदा लूट कर स्वदेश को सम्पन्न और समृद्धिशाली बनाने के उद्देश्य से। उसने दुर्ग का जी भर कर लूटा।

तेईस सौ वर्ष बाद, आज भी वह युद्ध भुलाये नहीं भूलता। विश्व-विजय का आकांक्षी सिकन्दर और उसकी विशाल सेना मुट्ठी भर अस्सकेनी सेना और वहाँ की वीरांगनाओं के सामने कितनी ही बार टिक न सकी। दुनिया के एक महान सम्राट को लोहे के चने चबाने पड़े—एक मामूली राज्य की वीरांगनाओं के सामने। दुनिया में ऐसी वीरतापूर्ण मिशाल ढूँढे नहीं मिलती। स्वाधीनता के लिए सब-कुछ निछावर कर देना, दुश्मन के सामने सिर न झुकाना, ऐसी परम्परा भारतीय इतिहास में ही देखने को मिल सकती है।

25

प्रेत

गोपीलाल दवे

* * *

मैं भूतप्रेतों में विश्वास नहीं करता क्योंकि इससे शिक्षित होने की
का उल्लंघन होता है। आज़ाद देश के शिक्षक को ऐसी बातों का विरोध
रना चाहिए, जिनसे विज्ञानवादी होने का भी श्रेय अनायास मिल जाता
ह विचित्र ही है कि जिस बात का विश्वास नहीं उसमें ही उत्कंठा उत्पन्न
ाय और सचमुच प्रेत का साक्षात्कार हो जाय।

बात पुरानी नहीं—बिल्कुल नई भी नहीं। पुराने आचार्यों व शिक्षकों
रव पढ़कर गौरव की अनुभूति होती है तथा ईर्ष्या भी। यों हमारा देश
ों की सख्या में अग्रणी है, यह बात अन्य है कि आदर्शों का गुणात्मक रूप
? बीसवीं सदी का भारत का शिक्षक एक अभूतपूर्व जीव है। वह केवल
स्थानों में बिना सोचे-समझे की गई पूर्ति है। आजकल रिक्त स्थान किसी
ने पर नहीं होते, उत्पन्न किये जाते हैं। शिक्षक की वर्तमान दशा के मूल
ा मैंने अनेक शिक्षकों से तथा शिक्षा-प्रेमियों से लगाने का प्रयत्न किया

पर किसी ने भी सच बोलना उचित नहीं समझा। अपनी स्थिति की निम्न अनुभूति उतनी दु:खदायक नहीं जितनी कि उसकी अभिव्यक्ति अपमानजनक है।

एक बार छुट्टियों में भ्रमण-रत था। निरुद्देश्यता की औषध भ्रमण ही है। एक गाँव में पहुँचा। मेरा एक पुराना मित्र वहीं रहता था। बातों ही बातों में भूत-प्रेत की चर्चा निकली और बढ़ गई। मित्र ने कहा कि इस गाँव में एक सिद्ध प्रेत-साधक रहता है। वह मृत व्यक्ति के प्रेत से साक्षात्कार करवा सकता है। शीघ्र ही निश्चय किया कि ऐसे व्यक्ति से मिलना ही चाहिये—एक पन्थ दो काज। शंकाओं का समाधान भी होगा तथा रहस्य का परदा भी उठेगा।

गाँव के बाहर वह रहता था। शाम के समय वहाँ पहुँचे। साधक अकेला ही था। उसकी वेश-भूषा असामान्य लगी। आँखों में लालिमा थी। उसके कक्ष में कई ऐसी वस्तुएँ थी जो सामान्य घरों में उपलब्ध नहीं होतीं।

प्रणामादि की औपचारिकता होने के बाद हम एक आसन पर बैठ गये। मेरे मित्र ने मेरा परिचय दिया और आगमन का हेतु भी बताया। जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि मुझे तथाकथित विद्या में अविश्वास है तो साधक ने प्रमाण प्रस्तुत करने की तत्परता दिखाई।

द्वार बन्द कर दिया गया। कक्ष में हल्का अँधेरा था। साधक ने एक गोल वृत्त खींचा—कुछ चूर्ण फंके—आँखें बन्द कर कुछ पढ़ा। मुझे कहा "बोलो किससे बात करना चाहते हो?" मैंने सोचा, "क्यों न किसी मृत शिक्षक से ही साक्षात्कार करूँ?" कुछ महीनों पहले अखबार में एक अध्यापक की मृत्यु का समाचार था। उसकी कहानी छपी थी। मुझे उसका नाम व स्थान तथा अन्य बातें याद थी। मैंने तुरन्त कहा, "अमुक नाम वाले, अमुक स्थान निवासी शिक्षक से मुझे मिलाइये।" शीघ्र ही साधक ने कुछ मुद्रायें की, आँखें बन्द कर ध्यान किया। मेरे हृदय की गति बढ़ गई थी पर मैं सचेत था। घेरे में धीरे-धीरे एक कंकाल प्रकट हुआ। भयानक लगता था। विश्वास नहीं हुआ कि किसी जीवित प्राणी का ऐसा भी रूप बाद में होगा। हड्डियों का ढाँचा—न माँस न त्वचा। आँखें चमक रही थीं। संकेत मिलने पर मेरा उस प्रेत से निम्न वार्तालाप हुआ :—

मैं—"क्या आपकी स्वाभाविक मृत्यु हुई थी?"

प्रेत—"नहीं, मुझे मारा गया। गांधी की तरह मैंने भी दीर्घ जीवन की

हुए असवाया थ ।

प्रेत—"जीवन के प्रति मेरा दृष्टिकोण संतोष का रहा। मेरा विरोध शासन विभाग की उन नीतियों से था जहाँ शिक्षा जैसा विभाग अशिक्षकों के हाथ खिलौना बना रहा। जहाँ शिक्षा को हानि-लाभ के दृष्टिकोण से देखा गया, जहाँ घिनौनी राजनीति के जाल में शिक्षकों का व्यक्तित्व उलझ गया—जहाँ.........."

मैं—"ये बातें तो आज भी ज्यों की त्यों कायम है। क्या आप यह बताएँगे कि आपको ऐसी कौन-सी ठेस लगी जो घातक सिद्ध हुई ?"

प्रेत—"एक ही हो तो गिना भी सकता हूँ। मैंने मेरे समकालीन शिक्षकों में बहुसंख्यक ऐसे पाये जो स्थानान्तर के चक्र में समाप्त हो गये। योग्य शिक्षकों को तथाकथित ठेकेदारों का कोपभाजन होते हुए देखा। अध्यापन में अकुशल तथा अधिकारी के तलवे चाटने वालों की चाँदी बनते देखी। उपर्युक्त सारे विरोधी तथ्यों ने मेरे व्यक्तित्व को क्षीण कर दिया।"

इसी बीच साधक ने मुझे संकेत किया कि प्रेत के जाने का समय हो गया है। वार्तालाप का उपसंहार करते हुए मैंने प्रेत से अन्तिम प्रश्न पूछा।

मैं—"क्या आपने अपने जीवन में इस दुर्दशा के निवारण का कोई उपाय नहीं सोचा था ?"

प्रेत—"सोचा था, अच्छे ढंग से सोचा था। मैं चाहता था कि शिक्षकों को अन्य विभागों के कर्मचारियों से पृथक आदर्श धरातल पर देखा जाय। समाज में उन्हें गौरवान्वित रखने की दृष्टि से उनका आर्थिक जीवन समृद्ध किया जाय। केवल शिक्षा में रुचि रखने वाले ज्ञान-सम्पन्न लोगों को ही इस क्षेत्र में प्रवेश दिया जाय। पाठ्यक्रम एवं अन्य कार्यक्रमों को ऊपर से न थोपा जाय। शिक्षकों को हर सरकारी कार्य के लिए न भेजा जाय—पर.........."

धीरे-धीरे कंकाल अदृश्य होता गया और अविरात् मैं जैसे किसी झटके के साथ पुनः इसी जगत् की यथार्थताओं के बीच आ गया। कक्ष में प्रकाश को

लो बढ़ गई थी—जिसमे हम-सबने एक-दूसरों के चेहरों पर भावों की क्रीड़ा देखी।

साधक को प्रणाम करके मैं अपने मित्र के साथ बाहर आया। अंधेरी रात थी—चारों तरफ अंधेरा। मित्र ने चुप्पी भंग करते हुए कहा—"देखा, प्रेत होते हैं।" मैंने उत्तर दिया—"हाँ, होते हैं।"

मार्ग में चलते हुए मुझे ऐसा लगा जैसे उस प्रेत जैसे अनेकों प्रेत मेरी आँखों के सामने तैर रहे हैं।...... सभी कुछ अस्फुट शब्दों में कहे जा रहे थे। मैं तेजी से कदम बढ़ाने लगा। मित्र के घर पहुँचने पर मुझे ऐसा लगा कि मैं भी एक जीवित प्रेत हूँ।

●●●

26

शमादान

सुमन शर्मा

* * *

रात्रि के ग्यारह बज रहे थे, राधा अपने कमरे में पलंग पर पड़ी सोने का निष्फल प्रयास कर रही थी। राधा ने सोचा यह भी कोई जीवन है! न दिन देखता है और न रात। इन्हें तो बस, अपने रोगियों से ही फुर्सत नहीं मिलती। आखिर, अपने स्वास्थ्य को भी तो देखना चाहिये, इस तरह से यह शरीर कितने दिन चलेगा? राधा के हाथ-पैर जब हिलते-डुलते देखे तो रेखा भी उठ बैठी। बोली—'बूआ! पिताजी अब तक नहीं आये? सारा खाना भी ठण्डा हो गया होगा।'

'हाँ बेटी! अभी तक तो नहीं आया। न मालूम परोपकार की यह धुन कहाँ से सवार हो गई है!'

इतने में दरवाजे की घंटी बजी और रेखा भागती हुई द्वार पर जा पहुँची। वहाँ पहुँचते ही चौंक कर बोली—'ओह! कितना सुन्दर पिताजी! कहाँ से ले आये? इसे अब मैं बैठक में सजाकर रखूँगी।'

पुत्री को गोद में उठाये डॉ० चटर्जी अंदर आये और बोले—'देखो बहन, आज यह शमादान मुझे रायसाहब ने उपहार में दिया है। उनकी लड़की ठीक हो गई है न, इसलिये!'

राधा ने एक बार उस हीरे-पन्ने से जड़े हुए शमादान को और देखा और दूसरे ही क्षण उसकी आँखें अपने भाई के प्रति अभिमान से चमक उठीं। उस दिन फिर उनके विलम्ब से आने की कोई आलोचना न हुई। सब लोग प्रसन्नचित्त हो, खा-पीकर सो गये।

तीन-चार दिन बाद अचानक रात को द्वार खटखटाने की आवाज़ सुन, डॉ० चटर्जी बाहर गये तो देखा कि एक बलिष्ट किन्तु दीन-गरीब व्यक्ति आसरे की याचना कर रहा है। उनकी उदार प्रवृत्ति ने केवल उसी दिन नहीं वरन् और भी कई दिन उसे जाने न दिया। वह भी बड़े ही अपनेपन से रहता, खूब अच्छी अच्छी बातें करता और काम में भी हाथ बँटाता। घर के सभी लोगों से वह खूब हिलमिल गया था। लेकिन एक दिन अचानक कोई खटका हुआ और देखा तो रहमान (वह व्यक्ति) भी गायब था और वह शमादान भी।

राधा बरस पड़ी—'देख सुधीर ! मैं पहले ही कहती थी, बिना जाने-पहचाने किसी पर इतना विश्वास मत करो, लेकिन तुम मानो तब न ! दुनियाँ में सब तुम्हारे जैसे ही थोड़े हैं ? लो ! अब यह आठ-दस हज़ार की चोट और पड़ी।'

रेखा तो एकसाथ ही मचल पड़ी—'मेरा शमादान, पिताजी ! उसे ढूँढ़ दो पिताजी, मैं तो वही लूँगी।'

उन्होंने उसे समझाने का भरसक प्रयास किया, पुलिस में रिपोर्ट लिखाने का भी विश्वास दिलाया, लेकिन उनका दिल जानता था कि वे कुछ न करेंगे। उनका दिल कहता—बेचारे को जरूर ही कोई आवश्यकता आ पड़ी होगी, नहीं तो ''''''अच्छा आदमी था बेचारा !

और उन्होंने कोई प्रयास नहीं किया। रेखा को बहला देते—रिपोर्ट लिखा दी है, पुलिस जाँच कर रही है, आदि, आदि। लेकिन उनका दिल एक कदम भी आगे न बढ़ा था। वे रहमान को किसी भी तरह दोषी नहीं पाते थे।

एक दिन सायंकाल वे बाहर लॉन में बैठे थे कि उन्होंने एक थानेदार, कुछ सिपाही और बेड़ियों में जकड़े रहमान को पोर्च में घुसते देखा। आगे बढ़कर बड़े अदब से सैल्यूट देते हुए थानेदार ने कहा—'डॉक्टर साहब ! एक दिन यह आदमी इस शमादान को लिये हुए भागता चला जा रहा था।

मैंने तुरन्त पहचान लिया कि यह वही शमादान है जो उस दिन रायसाहब ने आपको भेंट किया था। लीजिये, मैं इसे पकड़कर आपके पास ले आया हूँ।'

'लेकिन थानेदार साहब! आपको कुछ भ्रम हुआ है। रहमान तो मेरे अपने लोगों में से है, मैंने ही उस दिन इसे यह दे दिया था। गरीब भले ही हो, चोरी तो यह कर ही नहीं सकता। इसकी वेशभूषा से कोई इसे चोर न समझले, इसीलिये भाग निकला होगा आपको देखकर।'

और थानेदार देखता ही रह गया, रहमान की आँखें नीची हो गई थी। उसकी बेड़ियाँ खोल दी गईं। थानेदार समझते हुए भी कुछ न कह सका, एक बार फिर सैल्यूट करके धीरे-धीरे चल दिया।

अब रहमान और डॉक्टर सुधीर अकेले रह गये। दया के अवतार अपने संरक्षणकर्त्ता की महानता देखकर रहमान रो पड़ा। सिसकते हुए उसने कहा—'दया करना बाबू! मैंने आपको पहचाना नहीं। मेरे ये हाथ जिन्होंने अपने पिता के घर सेंध लगाई है, अपने ही आश्रयदाता के यहाँ चोरी की है, उसी समय टूट क्यों न गये? ओह! कितना नीच हूँ मैं! मुझे माफ करना बाबू, मैं.......' और वह नीचे गिर पड़ा।

उसे उठाकर हृदय से लगाते हुए डॉक्टर ने कहा—'नहीं रहमान, यह शमादान तुम जरूर ले जाओ। यह केवल मेरी बैठक को ही नहीं, दुनियाँ को प्रकाश देने के लिये है। 'जाओ, इससे अपनी आवश्यकताएँ पूरी करो और दुनियाँ में अपना प्रकाश फैलाओ।'

अब तक राधा और रेखा भी वहाँ आ चुकी थी किन्तु इस प्रकार के वार्तालाप को सुनकर वे अभिभूत हो उठी और मूक दर्शक ही बनी रह गई। दिन बीतते गये और शमादान भी विस्मृति के गर्त में समा गया। अब रेखा भी कुछ समझदार हो गई थी। अब वह और उसकी बुआ, अपने पिता के रोज ही देर से आने पर भी कुछ न कहती, उन्हें उसकी आदत जो पड़ गई थी।

एक दिन डॉक्टर ने घर आते ही कहा—'राधा बहिन, अब हमें शीघ्र ही यह घर छोड़ देना पड़ेगा। मुझे 'प्रकाश मिल' के धर्मार्थ औषधालय में जगह मिल गई है। बड़े अच्छे हैं प्रकाश मिल के मालिक। वहाँ जाओगी तो खुश हो जाओगी देखकर। मिल के पास ही मजदूरों के लिये एक सुन्दर सी

बस्ती बनाई गई है, बच्चों के लिये जगह जगह पार्क बनवा रखे है,
सिनेमाघर भी है किन्तु टिकिट दर बहुत ही कम है। मुझे तो वे अपनी क
में ही बुला रहे हैं। सच, यदि नौकरी की जाये तो ऐसे ही आदमी के
रहकर।'

तब से आठ ही दिन के अंदर ये सभी मिल की सोमा में आ गये
प्रकाशचंद्रजी का स्वभाव उन्हें बहुत ही अच्छा लगा। रेखा को तो इसमें अ
भी आनन्द इसलिये आया कि वहाँ उसे एक सखी जया भी मिल गई। ज
प्रकाशजी की पुत्री थी और रेखा की हम उम्र थी। दोनों रात-दिन स
रहती, खेलती-खाती और आनन्द मनाया करती।

एक दिन जया की वर्षगाँठ थी। सुबह से ही घर में धूम मची
थी। अनेक बच्चे आये हुए थे—सभी हँसमुख और प्रसन्नचित्त। उस दि
रेखा प्रकाशजी के पीछे ही पड़ गई कि चाचाजी, आज तो हम आपकी कहा
सुनके ही रहेंगे। आप रोज ही टाल देते हैं, आज तो सुनानी ही पड़ेगी।

'अच्छा बेटी! सुन लेना। मैं ज़रा एक काम से बाहर हो आऊ
फिर सुना दूँगा।' बच्चे उनके जाते ही फिर खेलकूद, हँसी-मज़ाक में ल
गये। अचानक रेखा चीखकर भागी, "पिताजी! रहमान! उठो न बुम
डर लग रहा है! अरे चाचाजी! भगाओ इस रहमान को, यह फिर कु
चीज उठा ले जाएगा।"

और रहमान वेशधारी चाचा जोर से हँस पड़े। उनकी नकली दाढ़
और फटे कमीज के अन्दर से प्रकाश चाचा निकल आये।

रेखा उनसे चिपट गई—'तो तुम ही रहमान थे प्रकाश चाचा!'

तभी राधा की शांत ध्वनि सुनाई दी—'तूने ठीक कहा था सुधीर!
वह शमादान घर के प्रकाश के लिये नहीं था। आज उसने संसार में अपना
प्रकाश फैला दिया है।'

● ● ●

27

मुंह दिखाई

अर्जुन 'अरविन्द'

* * *

रचना ने अनुभव किया कि परिवार भर के लिए वह भार बनी हुई है और परिवार उस भार को ढोता चल रहा है। इसीलिए तो घर से बाहर निकलने पर उसके लिए पाबन्दी है। हंसकर बोलने पर उसे मां की झिड़की सहन करनी पड़ती है। अपनी दयनीय दशा पर उसकी आंखों से कभी आंसू निकल आते हैं तो कई-कई ताने सुनने पड़ते हैं। और रचना भी इक्कीस वर्षों का बोझ लादे अपने शरीर को ढोती चल रही है। उसका हृदय कभी कभार झरने की तरह फूट पड़ता। वह सोचती—आखिर उसमें कौन सी कमी है जिसके कारण परिवार उसे बोझ समझ रहा है। वह सुन्दर युवा और स्नातक युवती है। पापा चाहें तो किसी स्कूल या दफ्तर में नियुक्ति दिलवा सकते हैं। लेकिन वह तो जल्दी से जल्दी घर से बाहर फेंकना चाहते हैं। उमर भी उसके लिए कोई उपयुक्त वर न मिले तो उसका क्या दोष?

ब्रजेश बाबू पिछले दो वर्षों से रचना का सम्बन्ध करने के लिए दौड़ धूप कर रहे थे। लेकिन हर बार उन्हें निराश होकर ही लौटना पड़ता। अच्छे से अच्छा वर वह रचना के लिए चुनना चाहते थे।

एक रविवार की सध्या को जब ब्रजेश बाबू निकट के शहर से लौटे तो उनके चेहरे पर ताजगी थी। परिवार के अन्य लोगों ने अनुमान लगाया इस बार वह सफल होकर लौटे हैं। सोफे पर बैठने के बाद ब्रजेश बाबू ने बताया एक अच्छे परिवार में वह रचना का सम्बन्ध निश्चित कर आये हैं। ब्रजेश बाबू ने अनुभव किया—अब घर से उदासी भरे बादल छँटने लगे हैं।

रचना की माँ में अब परिवर्तन आ गया। रचना के भविष्य पर उगली सैकड़ों गालियों को उसके स्नेह भरे दुलार ने पोंछ डाला। रचना माँ के इस अचानक परिवर्तन पर आश्चर्य करती। रचना को इतने भर से सन्तोष मिलता कि घुटन भरे जीवन से अब उसको मुक्ति मिलने लगी है।

रचना की माँ अब उसकी तारीफों की झड़ी लगा देती। वह पड़ोस में कहती फिरती—लाखों में एक वर मिला है मेरी रचना को। प्रतिष्ठित परिवार। है लड़का आई. ए. एस. है, पिता राजस्थान में तहसीलदार हैं। रचना के पापा कल उसकी फोटो दिखा रहे थे। रूपरंग और डीलडौल भी ठीक उसी तरह है जैसा एक बड़े ऑफीसर का होना चाहिये। रचना उस परिवार में राज करेगी, घर में कई-कई नौकर होंगे। फिर उसे किस बात की कमी रहेगी ?

और रचना ने जब अपने होने वाले जीवन साथी अनिल का चित्र देखा तो देखती रह गई। इतने सुन्दर जीवन साथी की कभी कल्पना भी उसने नहीं की थी। वह जब भी अनिल की तारीफ सुनती उसका यौवन में बौराया मन मादकता से भर उठता। मन का हर छोर कल्पना के धागों से अनदेखे सपने बुनने लगता। परिवार का कोई सदस्य जब अनिल के विषय में चर्चा छेड़ने लगता तो वह उठकर अपने कमरे में चली जाती और बिस्तर पर लेट कर अनिल की फोटो देखने लगती।

विवाह का एक महिना ही रह गया था। तभी से घर में तैयारियाँ आरम्भ हो गईं। ब्रजेश बाबू ने अपनी हैसियत के अनुसार सामान खरीदना आरम्भ कर दिया। घर में नई-नई वस्तुओं का ढेर लग गया। विवाह के अवसर पर रचना को देने के लिए आवश्यकता की सभी वस्तुएँ उन्होंने खरीद

ली। एक सुन्दर सा टेबल-फैन, दो कलाई घड़ियां, एक सोफा-सैट, अनेक कीमती कपड़े, ढेर सारे बर्तन व आधुनिक साज-सज्जा की अनेक वस्तुएँ उन्होंने एकत्रित करली।

ब्रजेश बाबू दहेज प्रथा को ठीक न समझते थे। लेकिन फिर भी रचना की सुख-सुविधा और उसके लिए अच्छा वर प्राप्त करने के लिए उन्होंने यह सब किया। रचना उनकी इकलौती पुत्री जो थी। उसको खाली हाथ कैसे घर से विदा करते? फिर समाज भी तो अँगुली उठाता, पता नहीं लोग क्या-क्या कहते।

फिर एक महीना आँख झपकते ही बीत गया। विवाह के दिन ब्रजेश बाबू का फ्लैट रंगीन बल्बों और ट्यूबलाइट की रोशनी से जगमगा उठा। बाहरी मैदान में कनातें खड़ी हो गईं। घर का वातावरण अतिथि और स्थानीय मित्रों की चहल-पहल हो हल्ले से भर गया।

बारात चढ़ी। रचना का मन नये-नये सपनों के बीच डूबने उतरने लगा। पिता के घर से दूर होने की सोचकर उसका हृदय बैठने लगता लेकिन अनिल के साथ नये परिवार में जाने का मोह उसमें उत्साह भर देता। नई साड़ी में लिपटी, सज-सँवर कर बैठी रचना सभी कुछ सोचती रही।

उसी समय घर के वातावरण में एकाएक उदासी छा गई। रचना कुछ समझ न सकी। उसने देखा, निकट बैठी सहेलियों के भी मुँह लटक गये। रचना ने पूछने का बहुत प्रयत्न किया पर उन्होंने कुछ न बताया। वह विवश हो उठकर उस कमरे में चली गयी जहाँ परिवार के लोग इकट्ठे हो रहे थे। उसने कमरे में देखा तो अपनी आँखों पर विश्वास न हुआ। ब्रजेश बाबू पलंग पर बेहोश पड़े थे। रचना के चाचा डॉक्टर सम्पत लाल उनका उपचार कर रहे थे। सभी के चेहरों पर स्याही पुत गई थी।

आधे घन्टे बाद ब्रजेश बाबू को होश आया। किन्तु फिर भी परिवार के सभी लोग उदास बैठे थे। रचना वहाँ से चली और अपनी सहेली सरोज से पूछने लगी। रचना के हठ करने पर उसकी सहेली ने बताया कि वर और पिता विवाह के अवसर पर कार की माँग कर रहे हैं। उन्होंने साफ कहला दिया कि दहेज में कार की व्यवस्था न की गई तो यह विवाह होना असम्भव है।

पाँच सौ रुपये पाने वाले साधारण से व्याख्याता ब्रजेश बाबू एकाएक कैसे तरह इतनी बड़ी व्यवस्था कर सकते थे। वर पक्ष की इस शर्त को सुनकर उनका हृदय दहल गया। आँखों के आगे अन्धेरा छा गया और उस अन्धेरे में अनेक चित्र मण्डराने लगे। यदि यह विवाह न हो सका तो लोग क्या कहेंगे, पीढ़ियों की बनी बनाई इज्जत धूल में मिल जायेगी। फिर रचना के लिए कहाँ वर ढूँढा जा सकेगा? ब्रजेश बाबू यह सब न देख सके और मूर्छित हो धरती पर गिर पड़े।

रचना के हृदय पर पहाड़ सा टूट पड़ा। पूरी घटना जानकर वह क्रोध से फुफकार उठी। मन ही मन सोचने लगी—'मुझे ऐसा विवाह नहीं करना, जहाँ रस्म के नाम पर मजबूरियों का सौदा हो इस घिनौने जीवन से तो अविवाहित रहना ही ठीक है। लेकिन विवाह न हुआ तो परिवार की प्रतिष्ठा का क्या होगा? पापा किस तरह अपने दोस्तों को मुँह दिखायेंगे…? उसका मन अनेक उलझनों मे फँस गया।

रचना सोचती रही और घर मे उदासी का सन्नाटा बढ़ने लगा। तभी रचना कुछ निर्णय लेकर उठी। उसने अपने चाचा डॉक्टर सम्पतलाल से कहा—'अंकल आप तीन दिन के लिए अपनी कार दे दीजिये। मुझ पर विश्वास करिए, तीन दिन मे यह वापस लौट आयेगी।'

डॉक्टर सम्पतलाल रचना की बात मान गये। ब्रजेश बाबू के मन का बोझ हल्का न हुआ पर विवाह की धूमधाम फिर आरम्भ हो गयी।

रचना को सहेलियो ने सजाकर बैठाया। वर तथा उसके पिता ने विजय पर कुटिल प्रसन्नता अनुभव की। और रचना का विवाह हो गया। दूसरे दिन रचना के साथ डॉक्टर सम्पतलाल की नई-नवेली कार ले बारात विदा हो गयी।

बारात अपने घर पहुँची। रचना ने देखा, फाटक पर अनेक प्रतिष्ठित लोग खड़े हैं। जिनमें कुछ उच्च अधिकारी और बड़े नेता जान पड़ते हैं। कार की फाटक खुली, रचना की सास ने उसे प्यार किया, बलाएँ लीं और उसे कार से नीचे उतारना चाहा। लेकिन उससे पहले रचना ने कहा—'जब तक मुझे 'मुँह दिखाई' के पच्चीस हजार रुपये नहीं मिलेंगे, मैं नहीं उतरूँगी।'

कार के निकट खड़े लोग स्तब्ध रह गये। रचना के ससुर गिड़गिड़ाने लगे—'बेटी रुपये कल ले लेना। इतने लोगों के सामने मेरा अपमान हो रहा है। इतने रुपयों का प्रबन्ध अभी कैसे करूँ ?'

रचना ने सिर झुका कर कहा—'जैसे मेरे पिता जी ने कार का प्रबन्ध किया था।'

ससुर के मुख पर हवाइयाँ उड़ने लगी थी। वह अब होश में आये थे। उन्होंने ड्राइवर को सौ रुपये का नोट देकर कहा—'कार ले जाओ, हमे नही चाहिये।' ड्राइवर नोट लेकर कार मे बैठ गया। रचना नीचे उतर आयी। उसने देखा—ससुर का सिर लज्जा मे झुक गया है।

28

सोचने का दुःख

प्रेमपाल शर्मा

* * *

आप जैसे समाज सेवी भावना वाले, युग को बदलने वाले लोगों का आना निहायत जरूरी है, फिर आपकी प्रभावशाली आवाज, भाषा पर अधिकार, आप बहुत कुछ कर सकते हैं, आपको आना ही पडेगा।

आज वह मेरे प्रति बहुत श्रद्धालु होकर सम्मेलन की शोभा बढ़ाने का आग्रह कर रहे है। महानता और शराफत के ये पुतले हैं। उनका वेश भव्य है, घनी भौंहो के नीचे की मुस्कराहट और घनी हो गई है, इस मुस्कराहट से वे जनता को पाँच साला भुलावा प्रदान कर चुके हैं। वे मेरे गुणों की लम्बी सूची प्रस्तुत कर रहे हैं जिनसे मैं स्वयं अनभिज्ञ हूँ। निहायत आत्मीय वाणी में संगीत घोलकर बोल रहे हैं। ऐसा लग रहा है कि उनकी नैया का तारन हार मैं ही हूँ।

मैं निहायत मामूली आदमी हूँ लेकिन सरकार मुझे राष्ट्र निर्माता कहती 'कर्णधार हो आज तुम्ही भारत माँ की नौका के, कहकर मस्का लगाती है।

भारत माँ की तो बात अलग यदि अपने पुत्र की माँ का निर्वाह कर दूँ तो बहुत बड़ी बात है।

एक खद्दर पोश अपने खोल से पाँच साल में एक बार बाहर निकलता है। माना हरिजन को वह काकाजी कहता है, वसुधैव कुटुम्बकम् मानकर ही व्यक्ति से रिश्ता कायम करता है, तीन इंच मुस्कराहट के साथ पेश आता है, ठीक आज की तरह। मैं चौंककर सोचता हूँ कहीं चुनाव तो नहीं आ गये? लेकिन इस भ्रम को दीवार पर लगा पोस्टर तोड़ देता है जिस पर समाजवाद शब्द अपनी सम्पूर्ण सुन्दरता के साथ चिपका रह गया है पिछले साल ही तो चुनाव सम्पन्न हो गये हैं। इस एक साल में गरीब हटते रहे हैं, गरीबी हटाते रहे हैं। आज भी पेड़ों की छाल खाकर बीमार पड़ते हुए शीत में अकड़ कर मरते जा रहे हैं। कितना उदार तरीका है गरीबी हटाने का। मेरे सामने खड़े महानुभाव जिनके भारी भरकम हाथ में मेरा दुबला हाथ तड़प रहा है, पिछले साल इसी खूब-सूरत शब्द के सहारे अपनी कुर्सी को खड़ा कर रहे थे। आज वे मेरे सामने खड़े हैं उनकी कुर्सी विधान सभा में खड़ी है।

—तो बात पक्की – २२ तारीख को सुबह दस बजे आप आना, आपका भाषण होना जरूरी है।

—लेकिन किस विषय पर?

—मद्य निषेध पर, गोकुल भाई भट्ट भी आ रहे हैं।

—घबराये मत, रात को कवि सम्मेलन भी होगा और उसमें आपका कविता पाठ भी होना चाहिये। वे मेरी कमजोर नस दबाते हैं।

अच्छा आयेंगे न? कहकर वे जीप की ओर बढ़ जाते हैं। जीप बढ़ती है, उसके आगे तिरंगा हवा में लहरा रहा है। मैं केवल एक बात सोच रहा हूँ या तो तिरंगा गलत जगह पर है या यह आदमी अथवा मैं।

यह भी आयोजित प्रचार है। नहीं तो मद्यपान के आदी व्यक्ति के द्वारा मद्य निषेध सम्मेलन! खच्चर! क्या बेईमान लोग ईमानदारी पर भाषण नहीं देते? मेरा बुद्धिजीवी मुझे फटकारता है।

उनकी जीप स्टार्ट हो गई है, उड़ती धूल से हटाओ अट आ गया है, 'गरीबी' रह गया है, खेतलाजी के मन्दिर में शाम की आरती हो रही है।

ये आदमी इस क्षेत्र का नेता है और मैं जानता। मेरा सब-कुछ यह है, यह चाहे तो क्या नहीं हो सकता? मनचाही जगह ट्रान्सफर, बेकार साले को

री और न जाने क्या-क्या यह करा सकता है ? घर में आई लक्ष्मी को र मारना बुद्धिमानी नहीं। यही अवसर है जब मैं इसकी चमचागिरी करके ने बिगड़े काम बना सकता हूँ। लेकिन मद्यनिषेध पर जो भाषण है, वैसे दे ता हूँ क्योंकि भाषण देना सबसे आसान काम है, लेकिन मेरे जैसा वकूरहेजी इसी इस विषय पर बोले तो 'मुँह में निषेध बगल में बोतल होगी,' वैसे यह ी है कि मद्यपान के बाद लोग मद्यनिषेध पर जी भर कर बोलते हैं, साथ ही ण्ड काव्य की रचना भी कर सकते हैं।

—बोलूँगा, मैं मन ही निश्चय करता हूँ। चमचागीरी का यह स्वर्णिम वसर मैं खोना नहीं चाहता।

—भूखों को

—रोटी दो

—हर जोर जुल्म की टक्कर में हड़ताल हमारा नारा है।

साथी रफीक का जुलूस आ रहा है। प्राइमरी स्कूल के लड़के जोर से ारे लगा रहे हैं। साथी रफीक चबूतरे पर खड़े होकर भाषण देने लगते हैं।

क्या आप चाहते हैं आपके बच्चे भूखे मरें, आप शीत में अकड़ कर मर जायं ? आपके बच्चों को पढ़ने के लिए किताबें न मिलें, आपके साथी बबूल की छाल खावें, आपके पशुओं की ठठरियों से ढक भर जावें, आज ये सब हम देख रहे हैं, गरीबी हटाओ का नारा खोखला है। समाजवाद ढोंग है। हम भूखों मरें तो तुम्हें हलवा खाने का क्या अधिकार है ? तुम्हारे वादे और आश्वासन कहाँ गये ? इन सब बातों का जवाब मांगना होगा—२२ तारीख को हमें अपनी जान हथेली पर रख तहसील पर प्रदर्शन करना है। जेल हो जायेगी हो जाय। इस तरह भूखे मरने से तो जेल ही बहतर है। मुझे आशा है आप हमारा साथ देंगे। यह संगठन किसान मजदूरों का संगठन है। अंगुलियों में पड़ी हुई तीन सोने की अंगूठियों को चमकाते हुए गले में पड़ी सोने की चेन को सहलाते हुए 'इन्कलाब जिन्दाबाद' का नारा लगाते नीचे उतर जाते हैं। वे उतर कर मुझसे हाथ मिलाते हैं। सरकार के चमचे मत बनो विद्रोही कविताएँ लिखो। क्रांति के गीत लिखो।

—लेकिन साथी, मैं सरकार का अदना-सा नौकर हूँ। मुझे यह सब शोभा नहीं देता।

—नौकरी ? अपनी इच्छा से ही छोड़ दो, नौकरी। जैसे मैंने छोड़दी। कहते वे आगे ठेके की ओर रवाना हो जाते हैं।

—मैं मन ही मन उनकी बिना मांगे दी गई सम्मति पर झुंझलाता हूँ या अपनी विवशता पर ! काश उनकी तरह मेरे पास भी सौ बीघे बढ़िया जमीन होती तो आज मैं ही उन्हें सम्मति दे सकता था। ट्रेड यूनियन के सदस्यों मे फूट डालने का गुर मुझे आता तो मैं भी बिना एक पैसा खर्च किये शराब पी सकता था। भरा पेट ही क्रान्ति के गीत गाता है। समय ने शब्दों को नये अर्थ दे दिये। अभी तक लड़के नारे लगाते हैं, चिल्ला रहे हैं। मैं गली मे मेरा लड़खड़ाता बचपन को देख रहा हूँ जिनके चेहरे मुरझे हुए। शरीर अस्थिपंजर है मेरे देश का बचपन। आज मेरे देश को क्या हो गया है ? नारे, भाषण, जुलूस, बन्दो, हड़तालों, आन्दोलनों पर टिका मेरा स्व, कागज की नाव पर तिरता देश का अस्तित्व, अखबारो में कुछ अच्छा घटने की खोज मे थकी ये आँखे और दीवार पर चिपका मुँह चिढ़ाता समाजवाद, धूल के बगूलों मे फँसी मेरी जिन्दगी, क्यों सोचता हूँ मैं ये सब। जैसे सब जी रहे हैं बिना सोचे समझे मुझे भी अपने दिन काटने चाहिए। लेकिन मस्तिष्क मे सैंकड़ो प्रश्न उमड़ रहे है। अखबार मे छपे दिल्ली विश्वविद्यालय के छात्रों की शून्य में उठी मुट्ठियाँ अनेक प्रश्नवाचक तैयार कर रही हैं। कोई अपील दमदार नहीं दीखती। अँधेरा घिरता आ रहा है और मैं एक ही स्थान पर गोल-गोल चक्कर काट रहा हूँ। पूर्व में एक तारा धीरे-से उगा है, बिना किसी शोर या नारे के, लेकिन मेरे कानों मे अभी भी नारे और लाउडस्पीकर पर चिंघाड़ती आवाज गूँज रही है। क्या इन भाषणों से शान्ति हो जायेगी ? क्या इनसे फसलें उग जायेंगी ? मेरे देश की फसलें फूल जायेंगी या रोटियाँ बन जायेंगी ? कुछ भी नहीं होगा सिवाय इसके कि एक मे एक बाजारू पीढ़ी इस देश मे जन्मती जायगी और काल इस फन्दे में ये देश द्वापर से ही बेट गया। धर्म क्षेत्र कुरुक्षेत्र मे कृष्ण का धर्म का उपदेश प्रथम और अन्तिम उपदेश था। न जाने कौन गलत है ? मैं देश या व्यवस्था। मुझे करना चाहिये ? चाय के बिना मे थोड़ी देर के लिए भुला देना चाहिए इन सब बातों को।

× × × × ×

अँधेरे मे पेड़ के नीचे परछाईं घुटनों मे सिर दिये फफक-फफक रो रही है। उसकी सिसकियाँ स्पष्ट सुनाई पड़ रही हैं। चौकन्ना होकर अचानक रुलाई की [illegible]

की कि परछाई जवानी है या मरदानी। अब मरने के अतिरिक्त कोई रास्ता नहीं, परछाई सिसकियों में ही बुदबुदाई। स्वर से पहचान गया हूँ। यह घीसू-कुमार का बी. ए. पास लड़का है। तीन साल से बेकार, बाप अफीमची है। उस नेता नाम के प्राणी ने इस निरीह युवक को बहुत झांसे दिये हैं। नौकरी मिल भी जाती लेकिन अर्थ पर आकर मामला अटक गया।

क्यों रो रहा है कालीचरण ? क्या हुआ रे ? मैं बोल पड़ता हूँ वह हिचकियाँ भर-भर कर रोने लगता है। बताता क्यों नहीं क्यों रो रहा है ? नौकरी नहीं मिली तो क्या, हाथ-पैर सलामत हैं, मजदूरी कर। मुझे अपनी आवाज और उपदेश खोखले लग रहे हैं। उसका रोना बन्द नहीं है। मैं अब सचमुच दुखी होने लग गया हूँ। ये बेकार जरूर है लेकिन इस तरह उसे दुखी और रोते हुए आज ही देखा है, जरूर कोई खास बात है। हो सकता है बाप ने लानत मलामत दी हो, धिक्कारा हो, जवानी को कोसा हो, इसके अहम् को ठेस लगी हो, वैसे ये रोज ही होता है। मुझे मालूम है, इसका एक हाथ टूटा हुआ है। बाप ने एक दिन लाठी से मारा था। फिर आज यह क्यों रो रहा है ? क्या बात है कालू ? मैं स्नेह से उसे पूछता हूँ। रधिया का पता नहीं बाबूजी, आज शाम से गायब है। वही तो हमारे घर का एक सहारा थी, मेरी बेकारी में वही पूरे परिवार को रोटी खिला रही थी। सेठ के यहाँ मजदूरी करके वह हमारा पेट भरती थी। अब क्या होगा बाबूजी ?

—तो रोता क्यों है ? आ जायेगी। चली गई होगी, इधर-उधर मुहल्ले पड़ौस में।

—सब जगह खोज लिया, कहीं नहीं मिली, मुझे मालूम है अब वह कहीं न मिलेगी शायद, मर गई।

—चुप, अपनी बहिन के लिए ऐसे शब्द कहता है !

—सही कह रहा हूँ। मुझे पूरा विश्वास है ऐसी स्थिति में मरने के सिवाय कोई रास्ता नहीं है।

—क्यों ऐसी क्या स्थिति आ गई ?

—वह माँ बनने वाली थी बाबूजी, सेठ का पाप उसके पेट में पल रहा था। आज बापू ने उसे बहुत मारा था। इतने दिन तक देखी कहीं जाने वाली

पल भर में मेरे बाप के लिए कुलटा बन गई थी। सोचो बाबूजी इसमें उसका क्या दोष है? जवान लड़की और सेठ पैसे वाला! जब बापू ने उसे काम पर भेजा तब क्यों नहीं सोचा?

ये सब दुख मेरे साथ ही क्यों? इसे भी सुनाने के लिये मैं ही मिला, कोई और नहीं? साथी रफीक और नेता हरीसिंह को भी मैं ही मिला। मुझे ऐसा लगता है ये सब मेरे दुश्मन हैं. मुझे दुखो से जर्जर कन्ना चाहते हैं।

पकड़ो-पकड़ो भागने न पाये। लोग दौड़ते आ रहे हैं। आगे एक परछाई अँधेरे में अमराई की ओर भागी जा रही है। मैं और कालू भी भागने वालो के साथ हो जाते हैं। परछाई दौड़ती जा रही है, दौड़ती जा रही है। हम सब भी दौड़ रहे हैं। सहसा परछाई ठोकर खाकर पड़ती है। सब लोग उसके पास पहुँचते हैं। वह परछाई अचानक उठकर खड़ी हो जाती है और ठठाकर हँस पड़ती है, खबरदार जो कोई आगे बढ़ा तो मैं डाइन हूँ, डाइन। मैंने सेठ जानकीदास का खून किया है। मैं तुम सब का खून कर दूँगी। उसके हाथ में खून से भरी दँराती चमक रही है। उसकी नजर कालू पर पड़ती है। लोग खड़े देख रहे हैं। किसी की हिम्मत नहीं पड़ती कि आगे बढ़े और उसे पकड़े। इधर आ कालू, इन सब लोगों मे तू निर्दोष है। आ, डर मत, इन सबके लिये मैं डायन हूँ, पर तेरी तो बहिन हूँ, मेरे पास आ! कालू डरता-डरता उसके पास जाता है वह कालू के हाथ मे एक पोटली दे देती है। भाग जा, भाग जा, मत रहना इस गाँव मे। किसी दूर देश मे चला जाना। इन गाँव के सब लोग पापी हैं, क्या नेता क्या सेठ? मेरी बच्ची रधिया कहता बाप आगे बढ़ता है। रधिया पीछे हट एक भरपूर दँराती बाप की आँख मे भोंक देती है। लोग उसे पकड़े उसके पहले ही एक चीख अमराई में गूँजती है। रधिया के सीने में एक लम्बे फल वाला चाकू घुसा है। लोग भारी कदमों से लौट पड़े हैं उनके साथ मैं भी। मैं कालू को खोज रहा हूँ। उसका कहीं पता नहीं है।

रात ठिठुरती जा रही है।

२२ तारीख

साथी रफीक अव्यवस्था फैलाने के जुर्म मे तहसील के सामने गिरफ्तार।

कालू सेठ जानकीदास के खून और चोरी के जुर्म मे गिरफ्तार। मैं जानता हूँ वह जमानत और गवाही नहीं जुटा पायेगा। मैंने सब कुछ अपनी

आँखों से देखा है लेकिन गवाही और पुलिस कचहरी के झंझट में नहीं फँसना चाहिये । यहाँ पर मैं अपने स्व को भारी पत्थर के नीचे दवा देता हूँ ।

मद्यनिषेध के दिन सबसे अधिक शराब बिकी । कवि सम्मेलन में आये कवियों, वक्ताओं को देशी तथा सायों नेताओं को अंग्रेजी पिलाई गई । कुछ और भी हुआ जो लिखा नहीं जा सकता ।

मैं फिर गोल-गोल चक्कर काट रहा हूँ । सोचना दुःखी करता है, अत. सोचना छोड़ देने का निश्चय कर चुका हूँ ।

क्या ऐसा हो सकता है ?

● ● ●

बदला

वासुदेव चतुर्वेदी

* **

से वह बगला वीरान पड़ा हुआ था।

दूर तक फैले चाय बागान के खेत अब भी लहरा रहे थे। सामने ड़ी हुई थी। कर्नल जेली अपने रिटायरमेंट के बाद चाय बागान मि॰ स्मिथ के आग्रह पर यहीं आकर बस गये थे। मि॰ स्मिथ री दोस्ती थी। द्वितीय महायुद्ध समाप्त हो चुका था। लगातार युद्ध की विभीषिका को देखते रहने के कारण कर्नल कुछ दिन एकान्त में गुजारना चाहते थे। एक बार वे छुट्टियाँ बिताने के लिए यहाँ आए थे। यह स्थान उन्हें इतना पसन्द आया था कि रिटायरमेंट के बाद वे यहीं आकर बस गये थे। कुछ दिनों के प्रयास के बाद वे यह सुविधा जनक बंगला बना पाये थे। दूर-दूर तक फैले चाय बागानों और पहाड़ियों के बीच यह बंगला बड़ा

भव्य दिखाई देता था। कर्नल और उनकी पत्नी मेरिया के दिन आराम से गुजर रहे थे। एक घोड़ा और एक कुत्ता इस बंगले में इन दोनों के अलावा और थे। सर्दी शुरू हो जाने पर प्रायः कर्नल जल्दी ही अपने बंगले में घुस कर अन्दर से बंद कर लिया करते थे। यों भी पहाड़ी स्थान, जंगली जानवरों का भय और एकाकी जीवन किसी प्रकार भी निरापद नहीं था।

एक रात कर्नल जैनी और मेरिया सिगड़ी के पास बैठे ताप रहे थे कि सामने दूर-दूर तक फैले चाय बागानों से अजीब-अजीब सी आवाजें इन्हें सुनाई दीं। इन्हें ऐसा लगा कि वे किसी मोर्चे पर घायलों की चीत्कारें सुन रहे हों। इन आवाजों में और इन चीत्कारों में काफी समानता है। एक बार तो मेरिया भी इन आवाजों को सुन कर भयभीत हो उठी। कर्नल जैनी इन अजीब आवाजों को सुनकर सहम गये यद्यपि वे रिटायर्ड कर्नल थे फिर भी उस भरी सर्दी में पसीने से तर बतर हो गये। शान्तिकाल में इस प्रकार की आवाजें आना असंभव था इसलिए उन्होंने इस बात को जानने की दृष्टि से अपने बंगले की खिड़कियाँ खोल कर बाहर की स्थिति का जायजा लेना चाहा। ज्योंही उन्होंने खिड़की खोली तेज ठंडी हवा का झोंका आया और हवा के झोंके के साथ ही आवाजें तेज होती सी सुनाई पड़ीं। सांय-सांय करती बाहर बर्फीली हवा चल रही थी इसलिये उन्होंने खिड़की को पुनः बंद कर दिया और सिगड़ी के पास आ बैठे। थोड़ी देर बाद मेरिया ने और उन्होंने सोने का उपक्रम किया। उनकी आँखों में नींद नहीं थी। यह रहस्य उनकी समझ में कुछ भी नहीं आया। मेरिया तो खर्राटे भरने लगी थी, वे उसी रहस्य को सुलझाने में व्यस्त थे। ज्योंही उनकी आँख लगने वाली थी कि उन्हें दूर घोड़ों की टापें सुनाई पड़ीं। वे ध्यान लगाकर सुन रहे थे। मेरिया के खर्राटों के बीच उन्हें घोड़ों की टापों की आवाज स्पष्ट सुनाई पड़ रही थी। अस्तबल में बंधा उनका घोड़ा भी हिन-हिना उठा। उनकी हिम्मत नहीं हुई कि वे उठकर इस रहस्य का पता लगाएँ। वे चुपचाप अपने बिस्तर में जा दुबके। फिर रात भर क्या कुछ होता रहा इसका उन्हें भान ही न रहा।

सुबह जब वे उठे और मेरिया से उनकी आँखेंचार हुईं तो उन्हें लगा कि रात की घटना से उनकी पत्नी सहमी हुई है। भय और विषाद उसके चेहरे से परिलक्षित हो रहा था। उन्होंने चाय-नाश्ता लिया और अपनी

डायरी निकाल कर उसमें घटना का सम्पूर्ण विवरण लिखा। फिर उन्होंने पत्नी से कुछ कहा। अपनी रायफल कंधे पर लटकाये हुये घूमने निकल पड़े। उन्होंने चाय बागानों का चक्कर लगाया। इधर-उधर चक्कर लगाने के बाद उन्हें इस बात का तनिक भी आभास नहीं हुआ कि रात को इधर घोड़े या अन्य कोई जानवर दौड़े होंगे। वे ज्यों-ज्यों इस रहस्य को सुलझाने का प्रयत्न करते त्यों-त्यों उलझते ही जाते।

घूमते-घूमते वे अपने मित्र मि स्मिथ के क्वार्टर पर पहुँच गये। उनका वह मित्र तपाक से उनसे मिला। कुछ इधर-उधर की बात होती रही इसके बाद कर्नल सा. ने रात जो घटना घटित हुई उसके बारे मे बताया। सारे वर्णन को सुन कर मि स्मिथ ठहाका मार कर हँसा और बोला "कर्नल सा. शायद आपको वहम हुआ है। यहाँ तो आज के पहले न तो इस प्रकार की कोई घटना हमने सुनी और न देखी। शायद आपको मोर्चे का ख्याल आ गया होगा या फिर आप किसी गलतफहमी मे फंस गये होंगे। कर्नल ने कहा तुम मेरी बात का विश्वास नहीं करोगे। चल कर मेडम से पूछ लो वह तुम्हें बात बतायेगी। उनका वह मित्र खिलखिला कर हँस पड़ा फिर बड़ी दिलेरी से बोला, कर्नल सा. ऐसी कोई बात नहीं है, आप मस्ती से रहिये, जगली जानवरों का भय हो तो कोई चौकीदार नियुक्त कर देता हूँ, वह आपकी मदद करेगा। जब कर्नल सा. ने उसके सुझाव का समर्थन किया तो मि स्मिथ ने तुरन्त एक गोरखा जवान की ड्यूटी उनके बगले पर बोल दी। वे उसे लेकर बंगले पर चले आये।

गोरखा जवान अपनी ड्यूटी पर तैनात रहता। चौकीदारी करता रहता। एक रात वह बंगले के फाटक पर पहरा दे रहा था कि उसने दूर दो चमकती हुई आँखों को अपनी ओर आते देखा। लगभग सौ गज के फासले पर वे रुकी दिखाई दी, थोड़ी देर बाद उसने एक तेज हवा का झोका महसूस किया। वह उन चमकती आँखो की तरफ देख रहा था। उसकी रायफल उसके हाथ में थी, वह उसे साधे हुए खड़ा था। कुछ ही मिनिट गुजरे होंगे कि उसे अजीब-अजीब आवाजें सुनाई पड़ी। उन विचित्र आवाजों को सुनने के बाद उसे लगा कि दूर कहीं जानवर दौड़ रहे हैं। वह एक बारगी तो भय से कांप उठा, लेकिन थोड़ी देर बाद जब सब कुछ सामान्य हो गया तो वह बगले की सीढ़ियाँ चढ़ कर ऊपर पहुँचा। कर्नल सा. और उनकी पत्नी सो गये थे।

इसीलिए वह भी अपने कमरे में आ गया। वह अब भी भयभीत था उसके लिये वह सारा दृश्य अजीब था।

सुबह जब उसने सारा किस्सा कर्नल सा. को सुनाया तो उन्हें अपनी बात की पुष्टि होती सी जान पड़ी। उन्हें लगा कि कहीं कुछ गड़बड़ जरूर है। फिर भी उसे हिम्मत बँधाते हुए बोले, तुम शायद जंगली जानवर को देख कर डर गये हो। ऐसी कोई बात नही है। हिम्मत रखो और मुस्तैदी से काम करो डरने की आवश्यकता नही। जब चौकीदार चला गया तो उन्होंने दराज खोलकर अपनी डायरी निकाली और जो कुछ चौकीदार ने बताया उसे लिखने लगे। इस घटना के बाद उन्होंने चौकीदार को एक सुविधा यह दी कि सर्दी के दिनों मे एक सप्ताह मे एक बोतल अंग्रेजी शराब की वे उसे दिया करेंगे। इस सुविधा की सूचना जब चौकीदार को दी तो वह खुश हो गया। उन्होंने उसे यह भी कहा कि भविष्य मे यदि कोई खतरा तुम्हें दिखाई दे तो उसकी सूचना तुरन्त मुझे दी जाय चौकीदार कर्नल सा. से सहानुभूति का वरदान पाकर खुश होता हुआ अपनी ड्यूटी पर चला गया। उसी मुस्तैदी से वह ड्यूटी देता रहा कुछ दिनो तक कोई घटना घटित नहीं हुई।

कई दिनो तक जब कर्नल सा. का मि. स्मिथ से मिलना न हुआ तो वह कर्नल सा. से मिलने के इरादे से उनके बंगले आ पहुँचे। उन्होंने उनकी आव भगत की। चाय नाश्ते के बाद वे शतरंज खेलने बैठ गये। शतरंज खेलते हुए स्मिथ ने पूछा "कर्नल सा. अब तो आपको किसी प्रकार की आवाजें सुनाई नही देती? तब उन्होंने बताया कि मुझे तो किसी प्रकार की आवाजें सुनाई नही दी पर चौकीदार को अवश्य कोई करिश्मा दिखाई दिया और वे आवाजें सुनाई दी। आप चाहे तो उसे बुलाकर पूछ सकते हैं। मि. स्मिथ ने चौकीदार को बुला कर पूछा तो चौकीदार ने जो कुछ देखा था वह ज्यों का त्यों सुना दिया। मि. स्मिथ को चाय बागान खरीदे पच्चीस वर्ष हो गये थे लेकिन इस प्रकार की कोई घटना न तो सुनी थी और न ही देखी थी। उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ, वे भी पशोपेश मे पड़ गये।

कुछ दिन और बीते। इस बीच कोई घटना घटित नहीं हुई। एक दिन उन्हें तार मिला जिसमें रेजिमेंट का कोई अफसर उधर से गुजर रहा था। वह रेल्वे स्टेशन पर उनसे मिलना चाहता था, उनसे तार द्वारा

आग्रह किया था कि अमुक दिन वे अवश्य उनसे मुलाकात करें। गाड़ी रात आठ बजे उस रेल्वे स्टेशन से गुजरती थी। कर्नल का बगला वहाँ से तीन साढ़े तीन मील दूर था। वे अपना घोड़ा लेकर स्टेशन पर जा पहुंचे। रेजीमेंट का अफसर तपाक से मिला, बड़ी आत्मीयता से मिला। उन्होंने बताया कि युद्ध के दौरान शत्रु पक्ष का जो जासूस तुम्हारे द्वारा मारा गया था, उसने मरने के बाद रेजिमेंट मे तबाही मचा दो है, सैनिक उसके उत्पात से भयभीत हैं। उस जासूस से जो कागजात नक्शे आदि तुमने छीने थे वे भी नही मिल रहे हैं। क्या किया जाय? कर्नल ने भी विगत दिनो मे जो कुछ घटित हुआ था, वह सुनाया तो रेजिमेंट के उस अफसर को पक्का विश्वास हो गया कि इस उत्पात से कर्नल भी अछूता नही रहा। खूब घुल-मिलकर बाते हुई। उन्होंने अफसर से कुछ दिन रुकने का आग्रह किया तो उन्होंने लौटते वक्त रुकने का वायदा किया और चला गया।

कर्नल स्टेशन से लौट रहा था। समय नौ साढ़े नौ बजे का था। तरह-तरह के विचार उनके दिमाग मे चक्कर काट रहे थे। एकाएक घोड़ा ठिठक कर रुक गया, उन्होंने टार्च लगा कर देखा तो स्तब्ध रह गये। बीच सड़क मे एक लाश पड़ी थी, गौर से देखने पर मालूम हुआ कि वह आसमानी वर्दी पहने शत्रुपक्ष का कोई सैनिक है। उसके शरीर से खून बह रहा था, जैसे उसका खून अभी अभी हुआ था। उसकी आँखें चमक रही थी। उन्होंने अपने दिमाग पर जोर डाला तो उन्हे लगा कि यह तो वही जासूस है जिसे उन्होंने जासूसी के आरोप मे भून डाला था। उन्हे आश्चर्य हुआ कि आखिर यह क्या माजरा है। वे अपने घोड़े को हांकते हुए आगे बढ़ने लगे कि उन्हे फिर वही विचित्र आवाजे सुनाई दी। एक बार तो वे घोड़े पर बैठे हुए सहम गये। वे गुमसुम चले जा रहे थे। पीछे मुड़ कर उन्होंने देखा तो लगा कि वे चमकीली आँखें उनका पीछा कर रही हैं। इसकी उन्होंने परवाह नही की और वे बगले की ओर बढते ही रहे। वे बंगले मे पहुंचे तो चमकती आँखें बंगले से सौ गज के फासले पर रुक गई। अब तक अजीब-अजीब आवाजें आना बन्द हो चुकी थी।

वे गुमसुम से घोड़े को अस्तबल में छोड़ कर बगले में घुस गये। मेरिया अब तक सो चुकी थी। उन्होंने उसे जगा कर बातें की, थोड़ी व्हिस्की पी। खाना खाकर जब वे सोने लगे तो उन्हें वे डरावनी आवाजें फिर सुनाई

कई दिनो तक मैं इनका पता लगाता रहा। अभी थोड़े दिनो पूर्व ही मैं इनको ढूंढ पाया और आज मैं बदला ले चुका हूँ तो कितनी प्रसन्नता अनुभव कर रहा हूँ। जो कागजात कर्नल ने मुझसे प्राप्त किये थे मैं उन्हें अपने साथ ले जा रहा हूँ। यह बदला था जो देश भक्ति के काम पर मरने के बाद ले चुका हूँ।" 'रस्किन'

इस डायरी के माध्यम से कर्नल और उनकी पत्नी की हत्या करने वाला रस्किन था, फिर भी रहस्य बना हुआ है कि विचित्र आवाजें, चमकदार आँखें और घोड़ो के टापो की आवाज क्यों और कैसे आती रही।

30

वादा

सुरेशकुमार 'सुमन'

* * *

लीला ने कॉलिज से आकर अपना कार्डिगन उतारा और किचन में घुस गयी—"मम्मी, कितनी देर है ? मुझे जोरों से भूख लग रही है।"

रजनी ने फौरन लीला को खाना परोस दिया, परांठे और आलू।

"मम्मी, अचार और चटनी ?"

"अचार और चटनी कहाँ से रोज-रोज लाकर तुझे दूँ; तेरा एक साग से काम नहीं चलता क्या री ? तू तो बड़ी चटोरी है।" कहते-कहते रजनी मुसकरा उठी—"किसी तरह गृहस्थी का रथ चल रहा है। बस, जो गुजर जाए, गनीमत है।"

दिलीप के परिवार में लीला और उसकी माँ रजनी सहित कुल सात प्राणी हैं। दिलीप डिप्टी डाइरेक्टर के दफ्तर में ऑफिस सुपरिन्टेंडेंट हैं। खिचड़ी बाल, आधे स्याह और आधे सफेद। आँखों पर ऐनक। बात करते हैं तो उनकी गरदन बेहद हिलती है।

"बिटिया, आजकल तो तुम्हें बहुत मेहनत करनी पड़ रही है। परीक्षा अब पास ही है। इस साल तुम ग्रेजुएट हो जाओगी।"

"हाँ, पापा, मेहनत तो कर रही हूँ। उम्मीद तो अच्छे नम्बर मिलने की है। नोट्स भी ढेर सारे लिए हैं।"

"बस, अगले साल तुम्हें बी० एड० करा देंगे।" —दिलीप ने लीला के सिर पर हाथ फेरा।

लीला भोजन करके ड्राइंग कक्ष मे चली गयी।

× × × ×

"अजी, सुनते हो? लीला की पढाई की फिक्र कर रहे हो, अच्छी बात है। पर कुछ बिटिया के पीले हाथ करने के बारे में भी विचार किया है? लड़की सयानी होती जा रही है। इसके लिए कोई लड़का तो तलाश करो।"

"हाँ, रजनी, मैं किसी योग्य लड़के की तलाश मे हूँ। रिश्ते तो कई मेरे ध्यान में हैं, पर उनके घर मे शिक्षा का बोलबाला नहीं है। मैं तो शिक्षित लड़के चाहता हूँ—ऐसे लड़के, जहाँ देहेज भी कम-से-कम देना पड़े।"

"आप कितने रुपये लीला के सगाई-ब्याह मे खर्च करना चाहते हैं?"

"रजनी, हमारे घर की हैसियत तो तुमसे छिपी हुई है नहीं। तुम तो हमारे घर की मालकिन हो।"

"फिर भी आपको कुछ अन्दाज तो होगा?"—रजनी ने जिज्ञासा जतायी।

"मैं तो पाँच हजार रुपये के दरम्यान लीला के हाथ रखा देना चाहता हूँ।"—दिलीप के स्वर में दृढ़ता थी।

"अगर अच्छा वर ढूँढना हो तो बीस हजार रुपये तो खर्च हो ही जायेंगे।"

"बीस हजार!"—दिलीप की आँखें फैली-की-फैली रह गयी। "ओह, बीस हजार का क्या होगा?"

"बीस हजार से कम मे आपको कोई अच्छा खानदान लीला के लिए नहीं मिलेगा।"

दिलीप को हँसी आ गयी, "क्या अच्छे लड़के की पहचान यह है कि उसका घराना मालदार हो? दौलत, मेरे खयाल में, किसी व्यक्ति की काबलियत का सर्टिफिकेट तो नहीं है।"

"ये आदर्श की बातें तो अब छोड़ो। आकाश में कल्पना की उड़ानें तो काफी भर ली, अब कुछ धरती पर चलने-फिरने की बात करो। आकाश में यों कलाबाजी खाने से तो काम न चलेगा। आखिर, लौटकर आना तो फिर से धरती पर ही होगा।"

हो-हो करके दिलीप की हँसी उनकी घनी मूँछों में से बाहर फूट पड़ी, "आज तो बड़ी बढ़ चढ़ कर बातें कर रही हो रजनी। बड़े उपदेश झाड़ रही हो!"

"उपदेश! मेरी बात को आप महज उपदेश कहते हैं! इस भौतिक दुनिया में इन्सान का मूल्य अब रह ही क्या गया है? चाँदी के चन्द सिक्के और नोटों पर आज का इन्सान आसानी से बिक जाता है।"

"मैं अभी इस बारे में कुछ नहीं कहना चाहता। समय ही इस बात का जवाब देगा कि दिलीप सही था या नहीं!"

दिलीप अपने शयन-कक्ष में विश्राम करने चले गये।

× × × ×

"कांग्रेचुलेशन्स, लीला!" लीला की सहेली अरुणा लीला को बी॰ ए॰ में फर्स्ट क्लास लाने के लिए बधाई दे रही है। दोनों ही सहपाठिनें हैं। अरुणा ने भी सेकिण्ड डिविजन में बी॰ ए॰ की यह दुर्गम घाटी तय कर ली थी।

"आओ, अरुणा, कांग्रेचुलेशन्स तुम्हें भी परीक्षा में सफलता के लिए। अब आगे तुम्हारा क्या विचार है?"

"एम॰ ए॰ की क्लासेज़ जॉइन करने का, हिन्दी में!"

"अरुणा, ऐसा, तब तो भई, अब हम-तुम बिछुड़ जाएँगे। पापा तो मुझे अब बी. एड. में भेजना चाहते हैं।"

"तुम्हारा इरादा क्या अध्यापिका बनने का है?"

"मैं इस बारे में क्या कहूँ अरुणा? पापा की जैसी इच्छा होगी, करूँगी।"

"तुम ठीक कहती हो लीला! पापा जो भी करेंगे, हमारे हित में ही करेंगे। अब तुम अलग पढ़ोगी, मैं अलग पढ़ूँगी। फिर भी संध्याएँ तो हम दोनों को मिलाएँगी ही। छुट्टी का दिन तो अपना ही है। बहुत समय तक

साथ-साथ रहे हम दोनों, ठेठ बचपन से लेकर इस कॉलेज-जीवन तक। हम लड़कियों को आखिर तो मैका छोड़ना ही पड़ता है।"

× × × ×

रूपनगर के प्राणवल्लभ का परिवार अच्छा खुशहाल है। उनकी निजी कार है, एक शानदार बंगला है जो बिलकुल अत्याधुनिक डिजाइन का बना हुआ है। उनके बड़े लड़के गोप को अपनी मिल्कीयत का बड़ा गुमान है। प्राणवल्लभ भी दूसरों से ऐसे बातें करते हैं जैसे दूसरे मात्र कीड़े-मकोड़े ही हों। उनके घर में नौकर-चाकर हैं। लक्ष्मी उन पर प्रसन्न है। गोप बी० ए० उत्तीर्ण है, पर वह सूट-बूट पहने और टाई लगाकर ऐसे घूमता है जैसे विदेश में उच्च शिक्षा प्राप्त करके आया हुआ हो।

आज दिलीप वर की तलाश में इनके यहाँ आये हुए हैं। इक्कीस साल के गोप से वे अपनी लीला की सगाई करना चाहते हैं।

"प्राणवल्लभ जी, आपने आखिर क्या निश्चय किया ?"—दिलीप ने पूछा।

"मैं आपकी लड़की से गोप की सगाई तो करने को तैयार हूं, पर दहेज आपको भारी देना पड़ेगा।"

"क्या, जरा सुनूँ तो सही।"

"एक कार। इससे कम दहेज लेकर हमारा खानदान सन्तुष्ट न होगा। जब आप कार दहेज में देने की हामी भरें, तभी हम यह रिश्ता मंजूर कर सकते हैं।"

दिलीप को लगा कि जैसे उसके कान में गरम सीसा उँडेल दिया गया हो। "यह शादी क्या हुई, कन्या-विक्रय हुआ।"—वे मन-ही-मन बुदबुदाये, क्या कन्या-पक्ष का सदैव दुर्बल रहना उपयुक्त है? कन्या को इतनी हीन दृष्टि से क्यों देखा जाता है? कन्याओं में किस बात की कमी होती है? क्या नारी में लज्जाशील स्वभाव को उसकी कमजोरी मान लिया जाता है? यह तो सरासर अन्याय है। पर्दा-प्रथा तेजी से टूटती जा रही है। नारी-जागरण का अब शंख बज चुका है। नारियों को अब आगे आना ही होगा। हाय, मेरी लीला! कितने लाड़-प्यार से मैंने उसे पाला-पोसा है और आज उसके लिए वर ढूँढने में कितनी कठिनाई हो रही है!"

दिलीप उदास हो गये। वे हिन्दू समाज को कोसने लगे—"हाय रे समाज! तुम क्या सोचकर इस विश्व में ढेर सारी कुरीतियाँ लिए हुए अपनी

उच्चता और श्रेष्ठता का दम्भ भरते हो ! क्या समाजमात्र धनवानों का पक्षधर है ? भारतीय समाज में गरीबों के रख-रखाव के लिए क्या कोई व्यवस्था नहीं ? यदि आज मैं भी मालदार हुआ होता तो मेरी बेटी का ब्याह कभी का रचा गया होता ।"

दिलीप—"प्राणवल्लभ जी कार की आपकी माँग तो असाधारण है । भला, इस युग में कार दहेज में दी ही कैसे दी जा सकती है ? कोई चार सौ-पाँच सौ रुपयों में तो कार आती नहीं ।"

"दिलीप बाबू, लड़का सैंतमेंत में ही आपको थोड़े ही सौंप दिया जायेगा । आपसे कुछ नजराना मिलेगा, तभी आपकी मंशा पूरी हो सकेगी ।"

"प्राणवल्लभ जी, आपके पास धन की कोई कमी नहीं है । फिर आप और धन की माँग क्यों कर रहे हैं ? आपकी माँग साधारण हो तो बात समझ में भी आ सकती है, असाधारण फरमाइशें तो बिलकुल ही बेईमानी हैं ।"

"मेरा हीरे-सा बेटा है गोप । आपको अगर उसे लेना है तो वह सब-कुछ मानना होगा जो हम चाहते हैं ।"—प्राणवल्लभ के स्वर में कठोरता थी। फिर उन्होंने बातचीत को खत्म करने के अन्दाज में कहा, "कार तो आपको दहेज में देनी ही होगी । आप कार कैसे लाते हैं इससे मेरा कोई ताल्लुक नहीं । मुझे तो बस, कार चाहिये ।"

दिलीप के मन में आया, वह कस कर एक तमाचा प्राण के गालों पर रसीद कर दे, पर उन्होंने गजब का आत्म-संयम काम में लिया ।

प्राणवल्लभ उठ गये—"अच्छा, मुझे इजाजत दीजिए । जरा, जरूरी काम से मुझे बाहर जाना है ।"

दिलीप भी उठ खड़े हुए । उनके चेहरे की भाव-भंगिमा से लग रहा था कि वे किसी निर्णय पर पहुँच गये हैं । हवा में हाथ लहराते हुए बोले, मुझे यह रिश्ता मंजूर है । दहेज में आप कार ही तो चाहते हैं । आपको कार ही मिलेगी ।"

× × × ×

ब्याह का दिन मुकर्रर हो गया। दिलीप के घर में बिजली का फिटिंग हो चुका है । लाउडस्पीकर पर रेकर्ड पर रेकर्ड बज रहे हैं । पूरा वातावरण

विवाह के उल्लास में जैसे सजीव हो उठा है। लीला के उबटन लगाया जा रहा है। अरुणा उसके पास बैठी-बैठी हँसी ठिठोली कर रही है। घर के अन्दर के सहन में औरतें गीत गा रही हैं। दिलीप विवाह के काम-धंधे में बुरी तरह मशगूल हैं। कढ़ाव चढ़ रहे हैं। तीन हलवाई भट्टी पर लगे हुए हैं। दिलीप को न दिन का पता है, न रात का।

"बारात आज किस समय पहुँच जाएगी?"—रजनी ने दिलीप को पुछवाया।

"शाम को ६ बजे तक। दो बसें आएँगी। जो भी और आवश्यक तैयारी करनी हो, करवा ली जाए।"—दिलीप ने कहलवा दिया और फिर बारात के स्वागतादि कार्यक्रम की तैयारी में लग गये। उधर, रजनी जनवासे की ओर चल दी।

"अरे, मनोज बाबू, भट्टी का काम बिल्कुल ठीक चल रहा है न? पास की धर्मशाला के दोनों बड़े कमरों को खाली करवा के उनमें झाड़ू-बुहारी लगवा दी है? दीवारों पर के जाले तो उतरवा दिये हैं? ऐसा न हो कि बाराती नाहक हमारा मजाक उड़ाएँ और समधी कुछ नुक्ताचीनी करें।"

"नहीं दिलीप बाबू, आप निश्चिन्त रहें। सब ठीक हो जाएगा। मैं सतर्क हूँ।"—मनोज का उत्तर था। मनोज दिलीप के ऑफिस में ही क्लर्क था, दिलीप का अत्यन्त विश्वासपात्र।

शाम का सूरज ढलने की तैयारी कर रहा था। बारात आ पहुँची थी। बारातियों की खातिरदारी बड़ी मुस्तैदी से हो रही थी।

रात को ग्यारह बजे तक भोजन चलता रहा। साढ़े ग्यारह पर फेरों का मुहूर्त था।

"दिलीप बाबू, वह कार मुझे अभी तक नहीं दिखाई दी। आपने वादा किया था न?"—प्राणवल्लभ ने कहा।

"हाँ, कार तो कभी की खरीदी जा चुकी है। एकदम अत्याधुनिक मॉडल की है। कल सबेरे वह पहुँच रही है।"—दिलीप ने दिलासा दी।

फेरे फिर गये। सवेरे बारात को विदा होना था। लीला सज-धज कर बस की ओर अपनी रवानगी के लिए पहुँच रही थी। दोन भी विदा होने के लिए तैयार था। दिलीप और रजनी अपनी बेटी को छोड़ने आ गये थे। प्राणवल्लभ के तेवर बदले हुए थे। दिलीप प्राण के इस रवैयेन का कारण भाँप गये थे।

एक बड़ा-सा मखमल का डिब्बा प्राण को मनोज द्वारा दिलीप की ओर से सादर भेंट किया गया।

"यह क्या है ?"—प्राण ने तीखी आवाज में डिब्बे को देखते हुए कहा।

दिलीप मुस्करा पड़े—"अपने वादे का निर्वाह। जरा इसे खोल कर देखिए तो सही।"

प्राण ने उत्सुक-मन डिब्बे का ढक्कन खोला। अन्दर गुलाबी पेण्ट की हुई एक कार चमक रही थी। शानदार डिजाइन। उस कार को चलाने के लिए एक चाबी पास में रखी हुई थी। दिलीप ने चाबी भर कर उस कार को चलाकर बताया और वापस डिब्बे में रख दी।

"आपने कार माँगी थी। दिलीप बाबू ने दहेज में यह कार ही आपको भेंट की है। जरा देखिए, है तो यह कार ही, और कुछ तो नहीं"—मनोज कह रहा था।

प्राणवल्लभ हक्के-बक्के खड़े रहे।

31

स्वाभिमानिनी

बसंतीलाल महात्मा

• • •

भारत में राजस्थान सदैव अपनी वीरता एवं बलिदान के लिए प्रसिद्ध रहा है। उस राजस्थान में भी विशेषतः मेवाड़ के शौर्य एवं त्याग तो निःसन्देह रूप से अद्वितीय रहे है। यहाँ सदैव जन्मोत्सव मनाने की अपेक्षा मरणोत्सव मनाये गये। ऐसे ही मरणोत्सव की अभिव्यक्ति राजस्थानी कवि श्री नाथूदान महियारिया ने निम्न दोहों में बड़ी मर्मज्ञता एवं ओजस्विता से की है :—

> बेटा, दूध उजालियो, तूं कट पड़ियो जुद्ध।
> नीर न आवै मो नयण, पण थण आवै दूध ॥ १॥

सुत मरियो हित देस रे, हरख्यो बंधु समाज ।
मां नहँ हरखी जनम दिन, जतरी हरखी आज ॥ २॥
जनम दिरायो जनम दिन, मरण दिरायो आज ।
बेटा-हरख दिखाव जे, मरण देस रे काज ॥ ३॥

ऐसी ही महत्वाकांक्षी माताएँ अपने पुत्रों को देश-हित पर मरने के लिये प्रेरित करती थी। वे देश-हित पर मरने वाले पुत्रों के लिए अपनी आँखों से आँसू नहीं बहाती थीं। ऐसे मरणोत्सव के शुभ अवसर पर उनके स्तनों में दूध की धारा और पुत्र को जन्म देने के लिए प्रवाहित होने लगती थीं। ऐसी ही वीर क्षत्राणियों ने मेवाड़ में एक बार नहीं, दो बार नहीं, तीन बार जौहर की ज्वालाएँ प्रज्वलित कर अपने पुत्रों, पतियों एवं भाइयों को स्वतंत्रता की रक्षा में सर्वस्व अर्पण करने की महान प्रेरणा दी। यही कारण था कि स्वतन्त्रता-प्रेमी मेवाड़ के महाराणाओं ने कभी विदेशियों की दासता स्वीकार नहीं की। स्वतन्त्रता के लिये वन-वन में मारे-मारे फिरना, चट्टानों पर सोना एवं घास की रोटी खाना भले ही स्वीकार किया पर मुगल सम्राटों को अपने मुँह से बादशाह कहना तक स्वीकार नहीं किया। इसमें स्वयं महाराणाओं का आत्म-बल एवं स्वाभिमान तो था ही पर उनकी महाराणियों का आत्म-बल एवं स्वाभिमान उनसे भी बढ़कर था। अतः वे अपने पतियों-महाराणाओं को हमेशा संघर्ष में टक्कर लेने को प्रेरित करती रही। यहाँ एक ऐसी ही स्वाभिमानिनी महाराणी के स्वाभिमान की कथा प्रस्तुत की जा रही है जो मेवाड़ी दन्त कथा पर आधारित है।

× × ×

राजस्थान में श्रावण मास का बहुत अधिक महत्त्व है। इस मास में शिव भक्त शिवजी की आराधना बड़ी तन्मयता से करते हैं। राजस्थानी स्त्रियाँ श्रावण मास के प्रत्येक सोमवार को, जिसे सखी-सोमवार कहते हैं, अपनी सखियों के साथ गोठ (Picnic) करने किसी प्राकृतिक रमणीय स्थान

पर जाती है और पेडो पर डाले हुए झूलो मे झूलती हैं। साथ ही गाती है—
'आई-आई सावणिया री तीज, गौरी तो निसरी रमवा ने माँ का राज ।'
इसी श्रावण मास की शुक्ल पक्ष की तृतीया से त्यौहारो का प्रारम्भ होता है
एवं इसी मास मे भाई बहिनो का प्रसिद्ध त्यौहार रक्षा-बन्धन भी आता है ।
प्रत्येक भाई अपनी बहिनो को रक्षा-बन्धन के शुभ अवसर पर अपने यहां
(मायके मे) अवश्य लाता है । सम्वत् १६३० म ऐसी श्रावण शुक्ला तृतीया
आई थी । उस दिन कोटा के राजमहलो मे विशेष रूप से हलचल थी क्योंकि
कोटा महाराजा की दोनो विवाहित राजकुमारियां अपने मायके आयी हुई
थी । बाहर पुरुषो के दरबार लगने की तैयारियां हो रही थी तो अत.पुर
में स्त्रियो के दरबार लगने की विशेष रूप से तैयारियां हो रही थी । उसमे
एक ओर से जयपुर की महारानी सम्मिलित होने वाली थी तो दूसरी ओर
से मेवाड़ की महाराणी शामिल हो रही थी । ये दोनो सगी बहिनें थी ।
मेवाड़ की महाराणी बड़ी बहिन थी और जयपुर की महारानी छोटी बहिन ।
कई वर्षों बाद ये दोनो बहिनें इस श्रावण मास मे अपने मायके आई हुई थी ।
आज जयपुर की महारानी (छोटी बहिन) विशेष रूप से प्रसन्न थी कि उसे
अपनी बड़ी बहिन के समक्ष अपने वैभव का प्रदर्शन करने का शुभ अवसर
प्राप्त हुआ था । प्रातःकाल से ही वह अपनी साज-सज्जा एव शृंगार करने
मे जुट गई । विविध प्रकार के हीरे, जवाहरात एव मोतियो के गहनो की
सफाई की गई । मखमल की विशेष पोशाक तैयार करवाई गई । साथ ही
ढाके की मलमल की कुसुमल रग की साडी पर सलमे-सितारो के साथ सुनहरी
जरी का काम बड़े सुन्दर ढग से करवाया गया था । संध्या के होते ही जयपुर
की महारानी ने अपना शृंगार बड़ी सावधानी पूर्वक किया और ठीक समय
पर अन्त.पुर के दरबार में जा पहुँची । दरबार मे पहुँचने पर सब उपस्थित
सरदारों एवं उमरावों की पत्नियो ने खड़ी होकर उन्हें ताजीम दी । वे यथा-
स्थान विराजमान हो गई । उनके हीरे जवाहरात के आभूषणों ने दरबार मे
नयी चकाचौंध जगमगाहट करने लगी और तेल के दीपको का प्रकाश उनमे

लुप्त होगया। दरबार में विराजते ही उन्होंने पूछा, "क्या जीजीबाई (मेवाड़ की महारानी) अब तक नहीं पधारी ?" इस पर उन्हें सूचित किया गया कि अभी तो शृंगार धारण हो रहा है। थोड़ी देर में पधारने ही वाली है। पर जयपुर की महारानी को धैर्य कहाँ ? वह तो अपना वैभव-प्रदर्शन करने को उतावली हो रही थी। अतः उन्होंने एक दासी भेजकर जीजीबाई को कहलवाया कि वे दरबार में शीघ्र ही पधारें। दासी ने आकर पुनः सूचना दी कि थोड़ा सा शृंगार और शेष रह गया है। बस पधारने ही वाली हैं। थोड़ी देर बाद जीजीबाई अपने थोड़े से सोने के आभूषण एवं सादी वेशभूषा में दरबार में पधारी। दरबार में उपस्थित समस्त स्त्रियों ने अपने-अपने स्थान पर खड़ी होकर उन्हें ताजीम दी। वे भी यथा स्थान विराजमान हो गईं। जीजीबाई के विराजते ही छोटी बहिन ने व्यंग्य किया, "जीजीबाई ! आपने इतने से साधारण शृंगार करने में इतनी देर लगादी। कृपया, मेरी ओर देखिये। मैं इतने हीरे, जवाहरात एवं मोतियों के गहने धारण कर आपसे भी जल्दी दरबार में आगई।" इस व्यंग्य को सुनकर जीजीबाई ने बड़े धैर्य एवं शांति से उत्तर दिया, "बहिन ! स्त्री का सबसे बड़ा आभूषण उसका सतीत्व है। इज्जत के तो ये दो चार गहने ही श्रेष्ठ हैं। यदि मेरा डोला भी अकबर के महलों में जाता मैं आपसे भी अधिक हीरे, जवाहरात एवं मोतियों के गहनों में लद जाती।" यह कटु व्यंग्य सुनकर जयपुर की महारानी जलभुन कर खाक हो गईं और क्रोध में आकर बोली, "यदि आपका भी डोला बड़ी तीज (भाद्र कृष्णा तृतीया) तक अकबर के महलों में न भिजवाया तो मेरा नाम जयपुर की महारानी नहीं।" यह कहते हुए वे उठ खड़ी हुईं और भन्नाकर चली गईं। दोनों बहिनों की इस बातचीत से रंग में भंग हो गया। दरबार में एक भययुक्त सन्नाटा छा गया। सभी उपस्थित सामंतों एवं उमरावों की पत्नियाँ भविष्य की आपत्ति से चिन्ता में पड़ गईं। धीरे-धीरे दरबार हाल रिक्त एवं शांत हो गया।

× × × ×

निर्मलकान्ता कुलमोहर

जयपुर की महारानी अपने शयन कक्ष मे पहुँचकर पलग पर लेट गई और मन में सोचने लगी—

कहाँ तो मैं अपने वैभव-प्रदर्शन की अभिलाषा लेकर गई थी ? कितने श्रम से साज-शृंगार किया था ? पोशाकें बनवाने मे कितना रुपया स्वाहा किया था ? पर जीजीबाई के एक ही व्यग्य मे सब धराशायी हो गये। अब मैं भी देखती हूं कि जिस सतीत्व का जीजीबाई को इतना गर्व है, उस सतीत्व को नष्ट करवाकर ही रहूँगी। जीजीबाई अपने को समझती क्या हैं ? हैं तो एक छोटे से मेवाड राज्य की महाराणी ही।

यही सोचते-सोचते उन्होंने उसी समय अपने पतिदेव जयपुर के महाराजा को एक पत्र लिखा जिसमे सारी घटना का खूब नमक मिर्च लगाकर वर्णन किया और अंत में अपनी जीजीबाई के सतीत्व को दी गई चुनौती की तिथि भाद्रपद कृष्णा तृतीया की याद दिलाते हुए निवेदन किया- "हे नाथ ! चाहे सूर्य पूर्व के बदले पश्चिम मे उदय होने लगे, सागर अपनी मर्यादा छोड़ दे, हिमालय मे ज्वालामुखी का विस्फोट हो परन्तु मेवाड़ की महारानी का डोला एकबार अवश्य ही अकबर के महलों मे भेजना होगा तभी मेरे अशात चित्त को शाति प्राप्त होगी।"

पत्र को लिखकर अपने तकिये के नीचे रख दिया और शाति से सो गयी। प्रात:काल उठते ही सबसे पहला काम उस पत्र को एक तेज साडनी सवार द्वारा जयपुर पहुँचाने का किया।

× × × ×

उधर मेवाड़ की महाराणी भी अपने शयन-कक्ष मे पहुँची और शाति पूर्वक विचार करने लगी—

'छोटे मुँह बड़ी बात' करना इसे ही कहते हैं। चली थीं अपने वैभव का प्रदर्शन करने। क्या वास्तव मे जीवन मे वैभव का महत्व इतना बढ़ गया

है कि हम अपने आदर्शों को भी तिलांजलि दे दें ? हो सकता है कुछ व्यक्ति ऐसा भले ही करें। पर मैं मेवाड़ की महाराणी होने के नाते अपने सतीत्व की रक्षा अवश्य करूँगी। अपनी छोटी बहिन को दिखा दूँगी कि स्त्री का सबसे बड़ा आभूषण सतीत्व ही है और मैं उसकी रक्षा अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी कर सकती हूँ।"

इसी विचारधारा में उन्होंने भी अपने पतिदेव महाराणा को इस घटना की सूचना देना आवश्यक समझा। उन्होंने केवल संक्षेप में लिखा—

"हे प्राणनाथ ! यदि आप भाद्रपद कृष्णा तृतीया (बड़ी तीज) को आधी रात तक कोटा नहीं पधारेंगे तो रावरी दासी चम्बल में कूदकर आत्म-हत्या कर लेगी।"

फिर वे आत्म-हत्या करने के पाप-पुण्य पर विचार करने लगी तो उन्हें सतीत्व की रक्षा के निमित्त जौहर की ज्वाला में जीते-जी मरने वाली मेवाड़ी क्षत्राणियों के दृश्य अपने स्मृति-पटल पर याद हो आये। अतः उन्होंने भी अपने सतीत्व की रक्षा के लिये आत्म-हत्या करने का निश्चय कर लिया, यदि ऐसी परिस्थिति आई तो।

फिर वे भी निश्चिन्त होकर सो गई। प्रातःकाल वह पत्र एक तेज साँडनी सवार के साथ उदयपुर भेज दिया गया। महाराणा ने उस पत्र को पढ़ा और निश्चिन्त भाव से अपनी ढाल में रख दिया।

× × × ×

भाद्रपद कृष्णा द्वितीया का सुहावना प्रातःकाल था। रिमझिम-रिमझिम करके वर्षा हो रही थी। ऐसे सुहावने समय में पिछोले की पाल पर कुछ स्त्रियाँ गीत गा रही थी। इन गीतों की स्वर लहरियाँ महाराणा के कानों में पड़ी, जो उस समय प्रातःकालीन दतौन कर रहे थे। उन्होंने समीप खड़े एक दास से पूछा, "क्यों रे ! ये औरतें आज गीत क्यों गा रही हैं ?" उस दास ने उत्तर दिया, "अन्नदाता ! कल बड़ी तीज है। अतः आज ये औरतें 'दांतन हेले' के गीत गा रही हैं।" यह सुनते ही महाराणा को आश्चर्य हुआ और मुँह से अनायास निकल गया—"हें ! कल ही बड़ी तीज है। जा दौड़कर मेरी ढाल ले आ।" दास दौड़कर गया ढाल ले आया। महाराणा ने

डाल से निकाल कर पत्र पढ़ा और गहरी चिंता में डूब गये कि महाराणी ने कम्बल में कूदकर आत्म-हत्या करने का क्यों लिखा ? अब क्या करना चाहिये ? अंत में उन्होंने अकेले ही कोटा जाने का निर्णय किया और उस दास को अपना घोड़ा तैयार करने की आज्ञा दी ।

वर्षा रुकने का नाम नहीं ले रही थी। रह-रह कर जोर से बिजलियां चमक उठती थी और बादल गर्जना कर उठते थे । ऐसे समय में कोई भी अपने घर से बाहर निकलने का साहस नहीं कर पा रहा था । परन्तु ऐसे ही भीषण समय में एक अश्वारोही कम्बल की घूंघी ओढ़े कोटा की ओर बढ रहा था। उसे चलते-चलते आज दूसरा दिन था । आज भी वर्षा निरन्तर हो रही थी । इस प्रकार दो दिन से बराबर वर्षा में चलते रहने से अश्वारोही मूर्च्छित हो गया जिसके कारण उसके हाथ से घोडे की लगाम छूट पड़ी । ज्योंही अश्वारोही के हाथ से घोड़े की लगाम छूटी त्योंही स्वामि-भक्त घोड़े ने समझ लिया कि अश्वारोही अपनी चेतना खो चुका है। अतः वह सभलकर अब धीरे-धीरे चलने लगा । इस समय बडी तीज की सध्या थी । वर्षा के कारण अंधकार और भी घना हो गया था । उस चतुर घोड़े ने किसी बस्ती की तलाश में अपनी दृष्टि दौड़ानी शुरु की। थोड़ी देर में उसे एक टिमटिमाता दीपक दूरी पर दिखाई दिया । वह उसी दीपक की दिशा में अत्यन्त सावधानी-पूर्वक धीरे-धीरे चल दिया । अत में वह एक छोटे से गांव की बस्ती में पहुँच गया । कोई भी मनुष्य अपने घरो से बाहर नहीं था । अत. वह बस्ती के चौराहे पर पहुँच कर बड़े जोर से हिनहिनाया । उसकी हिनहिनाहट से सारे गाँव के घोडे एक साथ हिनहिना उठे । उस गाँव के पटेल ने कभी घोड़ की ऐसी जोर की हिनहिनाहट नही सुनी थी । अत. वह कौतूहलवश बरसते पानी में अपने घर से बाहर निकला तो क्या देखता है कि मेवाड़ के महाराणा घाडे पर लुढके पड़े हैं । उसने शीघ्रता से अपने भाइयो को बुलाया और घोडे पर से महाराणा को उतार कर अपने घर में ले गया । घोडे को भी घर में ले लिया गया । उस घोड़े पर लगी कम्बल की घूंघी को

अच्छी तरह सुलाने और घोड़े की अच्छी मालिश करने का आदेश अपने नौकर को देकर वह और उसके भाई महाराणा की सेवा में लग गये। महाराणा की कम्बल की घूघी को अच्छी तरह निचोड़ कर सूखने को डाल दी गई। उनके हाथों, पैरों और छाती पर सरसों के गरम तेल का मालिश किया गया और उन्हें भली प्रकार तपाया गया। फिर उन पर बहुत सारे बिछौने उनके शरीर में गर्मी प्रवेश कराने के लिये डाल दिये गये। इस प्रकार लगभग डेढ़ घंटे बाद महाराणा की मूर्च्छा टूटी और उन्होंने पूछा, "मैं कहाँ हूँ ?" पटेल ने उत्तर दिया, "अन्नदाता ! आप मेवाड़ की सीमा के अंतिम छोर के गांव में हैं।" तब महाराणा ने पूछा कि कोटा यहाँ से कितनी दूर है, कितनी रात गई है, और घोड़े का क्या हाल है ?" उत्तर में निवेदन किया गया, "अन्नदाता ! कोटा यहाँ से केवल चार कोस दूर है, एक प्रहर रात बीती है और घोड़े की भली प्रकार मालिश कर दाना-चारा खिला-पिला दिया गया है।" ये सब बातें सुनकर महाराणा को अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि कोटा आधी रात के पूर्व ही पहुँच जाऊँगा। अतः उन्होंने वापस घोड़े को तैयार करने की आज्ञा दी। पटेल के बहुत आग्रह करने पर उन्होंने केवल गरम दूध का एक कटोरा पिया। इस प्रकार पुनः अपनी यात्रा के लिये प्रस्तुत हो गये। आधे घंटे चलने के बाद व चम्बल के किनारे पहुँचे तो देखते क्या हैं कि चम्बल में भयंकर बाढ़ आई हुई थी। उस बाढ़ को देखकर घोड़ा एक बार पुनः जोर से हिनहिना उठा। उसकी हिनहिनाहट सुनकर महाराणा ने स्वतः कहा, "हाँ घोड़े, चम्बल पार करना मृत्यु को गले लगाना है, पर महारानी को बचाने के लिये तो आज मृत्यु को भी हँसते हुए गले लगाना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त कहा भी है कि जाके मन में खटक है, कोई खटक रहा।" यह विचार कर और अपने इष्टदेव एकलिंग जी का स्मरण कर उन्होंने अपने प्रिय घोड़े को एड़ लगाई। चतुर घोड़ा भी अपने स्वामी के संकेत को समझकर चम्बल में कूद पड़ा।

× × × ×

[illegible]

उधर कोटा के एक मैदान मे जयपुर के महाराजा के चुने हुए सात सौ सवारों का शिविर लगा हुआ था। जयपुर के महाराजा भाद्रपद कृष्णा तीज को प्रात काल ही मेवाड़ की महाराणी को कैद कर उसके डोले को अकबर के महलों मे पहुँचाने के लिये पहुँच गये थे। कल प्रात काल होते ही वे महाराणी को कैद कर लेंगे। अत. वे निश्चिन्त होकर आज रात्रि मे विश्राम कर रहे थे। आज पुन छोटी बहिन (जयपुर की महारानी) अत्यंत प्रसन्न थी कि उसके पतिदेव उसकी प्रार्थना पर जीजीबाई (मेवाड की महाराणी) के गर्व को मिट्टी मे मिलाने आगये थे।

× × × ×

इधर मेवाड की महाराणी अपनी अन्तरग दासी से वार्तालाप कर रही थी। —"प्रिय सखी, यदि महाराणा न पधारेंगे तो क्या होगा? एक प्रहर रात से भी अधिक बीत चुकी है पर महाराणा अब तक न तो पधारे हैं और न ही कोई सूचना भिजवाई है।" यह सुनकर दासी ने निवेदन किया, "महाराणी जी! आपके सतीत्व की रक्षा के लिये महाराणा जी अभी पधारने ही वाले है। आप धैर्य धारण करावें। आइये, हम ऊपर चलकर देखें कि महाराणा पधार रहे हैं या नही।" महाराणी को दासी का यह सुभाव पसद आ गया और वे दोनों दीपक लेकर महल की छत पर जा पहुँची। चारो ओर घनघोर अंधकार था। चम्बल मे भयकर बाढ़ आई हुई थी। बाढ को देखकर तो उन्हे और भी निराशा हुई कि इसे कौन पार कर सकेगा? परन्तु घनघोर निराशा मे ही आशा की किरण उसी प्रकार फूटती है जैसे घनघोर बादलो मे बिजली की चमक। थोडी देर मे उन्हें चम्बल की बाढ मे एक अश्वारोही जैसा कुछ तैरता हुआ महलो की ओर आता हुआ दिखाई दिया। महाराणी समझ गई कि यह अश्वारोही और कोई नहीं हो सकता सिवाय महाराणा के। अत. महाराणी की उत्साह से बाछें खिल गई। उसने दासी से कहा, "चल, अब शीघ्रता से नीचे चलें और

महाराणा को महलों में लेने और उनके विश्रामादि का प्रबन्ध करें।" दासी ने भी सहर्ष महारानी का सुझाव स्वीकार कर लिया और दोनों नीचे उतर पड़ीं। स्वयं महारानी दीपक लेकर उस घाट की ओर बढ़ी जिधर से महाराणा अपने घोड़े सहित तैरते हुए पधार रहे थे। थोड़ी ही प्रतीक्षा के बाद महाराणा उस दीपक के आधार पर उस घाट पर सुरक्षित पहुँच गये। महारानी उन्हें सप्रेम अपने महलों में ले आईं और उनके मानिस आदि स्वयं अपने हाथों से किया। एक चतुर स्त्री की भाँति महारानी ने उस समय कोई चर्चा चलाना उचित नहीं समझा और न ही महाराणा ने कुछ पूछा। भोजनादि के पश्चात् दोनों शांतिपूर्वक सो गये। महाराणा सदैव प्रात. चार बजे उठकर अपने इष्टदेव श्री एकलिंग जी का पूजा-पाठ नियमित रूप से करते थे। अत यहाँ भी उसी प्रकार चार बजे उठ बैठे। तब महारानी ने संक्षेप में सारी घटना कहकर यह भी सूचना दी कि जयपुर के महाराजा सात सौ सवारों को लेकर मुझे कैद करने आये हैं। अतः आप अपने इष्टदेव का स्मरण विशेष रूप से करावें। सारी बात सुनकर महाराणा मुसकराये और बोले, "नकटे तो यही चाहेंगे कि सब की नाक कट जावे। पर उनके चाहने-मात्र से कुछ नहीं होता। श्री एकलिंग जी हमारी रक्षा करेंगे क्योंकि 'जो दृढ़ राखे धर्म को, तिहि राखे करतार।' यह कहकर महाराणा अपने नित्य-नियम की तैयारी में लग गये। उस दिन महाराणा ने श्री एकलिंग देव को विशेष रूप से स्मरण किया। ऐसा कहा जाता है कि श्री एकलिंगदेव ने महाराणा को साक्षात् दर्शन दिये और कहा, "अपनी महारानी को भी अपने घोड़े पर पीछे बिठा लेना और उसके दोनों हाथों में दो तलवारें दे देना। इसके बाद जयपुर की सेना में जाकर उन्हें ललकारना। वे तेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकेंगे।" यह कह कर श्री एकलिंगदेव अन्तर्ध्यान हो गये। महाराणा ने अपने प्रिय इष्टदेव के सुझाव को अपनी प्रिय महारानी को सुनाया। महारानी उस सुझाव को सुनकर हर्ष-विभोर हो उठीं। अतः महाराणा अब कोटा में पलभर के लिये भी नहीं ठहरना चाहते थे। अतः

अपने आराध्यदेव के मुभावानुसार महारानी भी दो नंगी तलवारें हाथ मे लेकर महाराणा के पीछे घोडे पर सवार हो गयी। उस समय पर्दे का रिवाज था। अतः महाराणा ने महारानी को कम्बल की घूघी से ढक लिया और घूघी में महारानी के दोनो हाथ बाहर निकालने के लिये दोनो ओर दो छेद कर दिये गये। इस प्रकार चतुर्भुज का साक्षात् अवतार धारण कर महाराणा जयपुर की सेना में जा पहुँचे, जो अभीतक अस्त-व्यस्त पडी थी। जाते ही उन्होंने जयपुर के महाराजा को ललकारा और कहा, "मैं स्वय डोला लेकर हाजिर हो गया हूँ। कृपया उसे अकबर के पास भेजने का प्रबंध कीजियेगा।" महाराणा की ललकार सुनते ही पहले तो उन्हे विश्वास नही हुआ कि महाराणा आ पहुँचे हैं क्योंकि उनके जासूसो ने सूचना दी थी कि रात के ग्यारह बजे तक महाराणा नही पहुँच पाये हैं और उधर मेवाड़ के मार्ग में चम्बल मे भयंकर बाढ़ आई हुई है। अतः महाराणा का आना असम्भव है। परन्तु जब उस असंभव को प्रातःकाल इतनी जल्दी सम्भव होते हुए देखा तो वे हक्के-बक्के रह गये। वे कुछ भी न कर सके और *महाराणा महारानी को सकुशल अपने राज्य मे ले आये।*

× × × ×

पाठको! ये महाराणा और कोई नही स्वय महाराणा प्रताप थे और घोडा उनका प्रसिद्ध चेतक था। जयपुर के महाराजा मानसिंह थे जिनकी बुआ अकबर को ब्याही गई थी। इस प्रकार महाराणा प्रताप और जयपुर के महाराजा मानसिंह सगे साढ़ू थे। दोनों की, सगी बहिनें होते हुए भी अपने-अपने वातावरण के अनुकूल विचार-धाराएँ थी। ऐसी ही स्वाभिमानिनी महारानी ने महाराणा प्रताप को स्वतन्त्रता के अमर पुजारी बने रहने में पर्याप्त प्रेरणा दी।

लेखक

अरजन दर्जी, सहायक अध्यापक, राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय, कांकरोली, उदयपुर; अर्जुनसिंह अरविंद, काली पल्टन रोड, टोंक, अरनी राबर्ट्स, राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय, घाटोल, बांसवाड़ा; ओम अरोड़ा, चार्ल्स हायर सेकण्डरी स्कूल, श्री गंगानगर; कमर मेवाड़ी, धोइन्दा, कांकरोली, उदयपुर, गोपीलाल दवे, वरिष्ठ अध्यापक, हनवन्त उच्च माध्यमिक विद्यालय, शास्त्री नगर, पाल रोड, जोधपुर, अमृतलाल शर्मा, प्रधानाध्यापक, उच्च प्राथमिक विद्यालय, मण्डाली, (विजयनगर), भीलवाड़ा; जयसिंह चौहान, लीलावत भवन, बाठरड़ा कलाँ, उदयपुर; डॉ शिवकुमार शर्मा, उप-निदेशक, राज्य शिक्षा संस्थान, उदयपुर; दिनेश विजयवर्गीय, भैरूगेट, बालचन्दपाड़ा, बूँदी, दिलीपसिंह चौहान, प्रधानाध्यापक, राजकीय उच्च प्राथमिक विद्यालय, माकरोदा (उदयपुर); नन्दन चतुर्वेदी, वरिष्ठ अध्यापक, राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय, गुमानपुरा, कोटा; नसरुद्दीन, 121/10, टाक बिल्डिंग, कुचामन सिटी, नागौर, नाथूलाल चोरडिया, राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय, वल्लभनगर (उदयपुर), प्रेमपाल शर्मा, राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय, सेवाड़ी, पाली; प्रेम शेखावत 'पंछी,' राजकीय उच्च प्राथमिक विद्यालय, सींगोद खुर्द (गोविंदगढ़), जयपुर; बसन्तीलाल महात्मा, प्रधानाध्यापक, राजकीय माध्यमिक विद्यालय, सिंहपुर, ब्रजेश चंचल, शारदा सदन, ब्रजराज पुरा, कोटा; भगवतीलाल व्यास, विद्याभवन, उच्च माध्यमिक विद्यालय, उदयपुर; भागीरथ भार्गव, राजकीय यशवंत उच्च माध्यमिक विद्यालय, अलवर; मोडसिंह मृगेन्द्र, घाटा (धोरिया), चारभुजा, उदयपुर; रघुनाथ विश्वेश, चित्रकारों की गली, नाथद्वारा, उदयपुर; रघुनाथसिंह शेखावत, पीरामल उच्च माध्यमिक विद्यालय, बगड़, झुंझुनूं; वासुदेव चतुर्वेदी पोस्ट ऑफिस के पास, छोटी सादड़ी, चित्तौड़; विश्वनाथ पाण्डेय, राजकीय

माध्यमिक विद्यालय, राजलदेसर, चूरू; **विश्वेश्वर शर्मा**, श्रीकृष्ण कु
मटियानी चोहटा, उदयपुर; **श्रीमती सुमन शर्मा**, प्रधानाध्यापिका, राजक
बालिका माध्यमिक विद्यालय, छोटी सादड़ी, चित्तौड़; **सावित्री परम**
महावीर जन उच्च माध्यमिक विद्यालय, सी-स्कीम, जयपुर; **सांवरवइ**
द्वारा कानीराम सागरमल, दयानन्द मार्ग, बीकानेर; **सुरेशकुमार सुम**
वरिष्ठ अध्यापक, लाधू भवन, लूनी, जोधपुर; **हुलासचन्द जोशी**, टी
ट्रेनिंग कालेज, बीकानेर।